आत्म-गठन
या
ब्रह्मचर्य-प्रसंग

-:लेखक:-

अखण्डमण्डलेश्वर

श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द परमहंसदेव

—नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः—

—भिक्षायां नैव नैव च—

अयाचक आश्रम

डी० ४६/१९बी०, स्वरूपानन्द स्ट्रीट,

लक्सा, वाराणसी—२२१०१०

ॐ

आत्म-गठन
या
ब्रह्मचर्य-प्रसंग

-:लेखक:-
अखण्डमण्डलेश्वर
श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द परमहंसदेव

प्रथम हिन्दी संस्करण सन् २०२३ ई०

-नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः-
-भिक्षायां नैव नैव च-

अनुवादक- राम कुमार गौड़

मूल्य : १००/- रुपये

अयाचक आश्रम
डी०४६/१९बी०, स्वरूपानन्द स्ट्रीट,
लक्सा, वाराणसी-२२१०१०

प्रकाशक एवं मुद्रक - श्री स्नेहमय ब्रह्मचारी
अयाचक आश्रम
डी.46/19बी., स्वरूपानन्द स्ट्रीट, लक्सा, वाराणसी-221010
(उत्तर प्रदेश) - दूरभाष : 0542-2452376

: पुस्तक प्राप्तिस्थान :

अयाचक आश्रम
डी.46/19बी., स्वरूपानन्द स्ट्रीट, लक्सा, वाराणसी-221010

गुरुधाम
पी.238, स्वामी स्वरूपानन्द सरनी, काँकुड़गाछी,
कोलकाता–700054
दूरभाष - 033-2320-8455/0316

अयाचक आश्रम
''नगेश भवन'', 99, रामकृष्ण रोड, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग

अयाचक आश्रम
पो० -चन्द्रपुर, धर्मनगर, त्रिपुरा (उत्तर)

अयाचक आश्रम
20बी., लक्ष्मीनारायण बाड़ी रोड, आगरतला, त्रिपुरा (पश्चिम)
दूरभाष–0381-2228305

अयाचक आश्रम
राधामाधव रोड, सिलचर-788001, दूरभाष–03842-22012

साधन कुंज
हीरापुर, धनबाद, झारखंड, दूरभाष–0326-2310710

'दी मल्टीभरसिटी'
पो० - पुपुन्की आश्रम, जिला-बोकारो, झारखंड, पिन-821013

निवेदन

'आत्म-गठन या ब्रह्मचर्य-प्रसंग' नामक पुस्तक का कतिपय अंश कई वर्षों पूर्व मैमनसिंह के एक आवधिक पत्र (जो आजकल बन्द हो चुका है) में प्रकाशित हुआ था। किन्तु इसका प्रणयन इसके बहुत पूर्व बंगाब्द १३२९ (सन् १९२५ ई०) में हुआ था। अयाचक वृत्ति वाले आश्रम द्वारा बारह वर्ष तक प्रयास करने पर भी इस अमूल्य ग्रन्थ के प्रकाशन में सफलता नहीं मिली। जिस पुस्तक की हस्तलिखित प्रतिलिपि के प्रचार द्वारा ही बंगाल के असंख्य युवकों के आत्म-गठन में सहायता मिली है, आशा है उसी पुस्तक के मुद्रण के परिणामस्वरूप उससे भी अधिक तरुणों के आत्म-गठन में सहायता मिलेगी।

पूज्यपाद लेखक आज भी जनसाधारण के समक्ष देशपूज्य, लोकगुरु एवं यशस्वी वक्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। समय की माँग ने उन्हें खुले तौर पर कर्मक्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है। वक्तृता की असाधारण शक्ति के स्वामी होकर भी जिन्होंने खुले तौर पर वक्तृता-मंच से प्रयत्नपूर्वक दूर रहकर वर्षानुवर्ष तरुणों के जीवन-गठन में अपनी सुदुर्लभ सेवा प्रदान की है और उस समय स्वेच्छया आत्मगोपन करके, साधारण लोगों के बीच नितान्त साधारण आवरण में अपने असाधारण व्यक्तित्व को आच्छादित करके सभी से घुल-मिल गए। उस समय जो तरुणवृन्द उनके उपदेशों के आलोक में जीवन के यथार्थ मार्ग की खोज करते थे, उनमें प्रायः सभी के साथ इन तेजस्वी महापुरुष का परिचय-पत्रों से होता था और भावों का आदान-प्रदान लेखनी की सहायता से होता था। यह पुस्तक उसी काल में लिखी

गई थी।

उनके बारे में कहा जाए, तो पत्र लिखकर ही उन्होंने जीवन बिता दिया। वे आज भी असीम कर्मों के विरल अवसरों पर असीम भाव से दैनिक रूप से प्राय: चार-पाँच घंटे व्यथित चित्त वालों को सान्त्वना और हताश लोगों में आशा-संजीवनी प्रदान करने के लिए केवल पत्र लिखते रहते हैं। रेल, स्टीमर, नौका से भ्रमण के समय जिन्हें असंख्य पत्रों के उत्तर देने में ही व्यस्त रहना पड़ता है तथा परिचित-अपरिचित, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष का भेदभाव भुलाकर प्रत्येक अभ्युदय-प्रार्थी चित्त में उत्साह और प्रेरणा का संचार करना ही जिनकी दिनचर्या का प्रमुख अंग है, यह अमूल्य पुस्तक उनकी वज्र-विद्युत्मयी लेखनी से नि:सृत कतिपय व्यक्तिगत पत्रों का संग्रह मात्र है। बंगाब्द १३२९ (सन् १९२५) में वर्तमान बांग्लादेश के कुमिल्ला के कमलासागर (कसबा) उच्च अंग्रेजी विद्यालय के एक मेधावी छात्र के पास दो-चार दिनों के अंतराल पर उन्होंने धारावाहिक रूप से जो पत्र लिखे थे, उनमें से दुर्भाग्य का अतिक्रमण करके जो कतिपय पत्र सुरक्षित रह सके, उन्हीं से ही इस पुस्तक का प्रणयन सम्भव हुआ। आकस्मिक तूफान के कारण उक्त छात्र के घर से कुछ बहुमूल्य पत्र उड़कर नष्ट हो गए। वे पत्र फिर कभी प्राप्त नहीं हो सके। दुर्भाग्यवश किसी पत्र की भी द्वितीय प्रतिलिपि सुरक्षित नहीं रह सकी। तूफान थमने पर पता चला कि शुरुआत के तीन पत्रों और अन्त के आठ-दस पत्रों का कहीं नामोंनिशान भी नहीं था। जो पत्र सुरक्षित मिले, उनमें से व्यक्तिगत अंशों को हटाकर और एक दो जगह कुछ आवश्यक अंश समाविष्ट करके बंगाब्द १३४१ (सन् १९३७ ई०) में धारावाहिक लेख के रूप में यह पुस्तक संकलित

की गई। आशा है, यह तपोपूत शक्तिमयी वाणी मनुष्यत्व की साधना को सुलभ और सहज बनाएगी।

प्रसंगवश लेखक के तरुण जीवन की दो-एक बातों का यहाँ उल्लेख करना सम्भवत: अनुचित नहीं होगा। जिस आयु के एक तरुण के पास इस पुस्तक के वचनों को लेखक ने पत्र के रूप में भेजा था, लगभग उसी आयु में लेखक स्वयं किस प्रकार आत्म-गठन-परायण हुए थे, उसका कुछ वर्णन स्वाभाविक रूप से यहाँ स्थान पाने का दावा रखता है क्योंकि पूजनीय लेखक ने इस पुस्तक को अपने बाल-सखा स्वर्गीय ननीलाल कुंडू को समर्पित किया है।

ननीलाल जब बालक थे, तब लेखक भी बालक ही थे। दोनों लोग समान आयु और समान रुचि वाले थे। दोनों ही लोग किशोरावस्था से ही भगवान के नाम-जप के प्रति रुचि रखते थे और नाम-जप के द्वारा अपनी-अपनी विकासोन्मुख वृत्तियों को समृद्ध करने का प्रयास करते थे। जप, ध्यान, कीर्तन, कथा-प्रवचन-श्रवण आदि में ननीलाल और श्रीमत् स्वरूपानन्द जी नित्य संगी और हरि-हर के समान अभेद-मूर्ति थे। इस पुस्तक के लेखक के पितामह चाँदपुर के प्रमुख वकील और भक्तश्रेष्ठ हरिहर गंगोपाध्याय महाशय ने अपने गृह-मंदिर के सामने आँवले के वृक्ष की छाया में एक तुलसी-मंच का निर्माण किया था। ये बालसखा उसके ही नीचे बैठकर करताल बजाकर हरिनाम - कीर्तन करते थे और कभी-कभी ध्यान तन्मय होकर नाम-जप करते थे।

दस से तेरह वर्ष की आयु तक इन दोनों मित्रों का यही हाल रहा। इस पुस्तक में समाविष्ट विषयों को श्रीमत् स्वामीजी महाराज ने पन्द्रह वर्ष के एक बालक के लिए लिपिबद्ध किया।

बचपन में जिन्होंने अपने जीवन के प्रति रंचमात्र भी उपेक्षा नहीं की, बिन्दुमात्र आलस्य को भी प्रश्रय नहीं दिया, उनके द्वारा लिखित होकर इस पुस्तक ने बारह वर्षों तक अमुद्रित रहकर भी, हस्तलिखित रूप में सहस्राधिक युवकों के जीवन-गठन में सहायता की है। इति– पहला माघ, बंगाब्द १३४१ (सन् १९३७ ई०)।

द्वितीय संस्करण का निवेदन

प्रथम संस्करण की मुद्रित पुस्तकों के समाप्त होने के बाद बहुत दिनों तक इसका प्रकाशन नहीं हो सका। आश्रम की आर्थिक तंगी ही इसका कारण थी। यह पुस्तक सर्वजन-समादृत एक अप्रतिम जीवन-गठन-साहित्य है। इतने दिनों के बाद द्वितीय संस्करण प्रकाशित कर पाने पर हम धन्य हुए हैं। इति– अग्रहायण, बंगाब्द १३६२ (सन् १९६८ ई०)।

अयाचक आश्रम,
स्वरूपानन्द स्ट्रीट,
वाराणसी-२२१०१०

निवेदक
ब्रह्मचारिणी साधना देवी
ब्रह्मचारी स्नेहमय

अष्टम संस्करण का निवेदन

देश में तेजस्वी, कर्मठ, निर्भय, निश्चिन्त और सरल मनोभाव सम्पन्न साधकों की आज प्रबल आवश्यकता है। भिक्षावृत्ति से विरहित एक स्वावलम्बी और शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण आज की आवश्यकता है। पूज्यपाद लेखक ने इसी असाधारण जरूरत को देखकर अपने असाधारण जीवन को किशोरावस्था से ही देश के युवा-समाज की सेवा में नियोजित कर रखा है। 'आत्म-गठन' उनकी इसी सेवा का

एक जाज्वल्यमान प्रतिरूप है। इस पुस्तक का तृतीय संस्करण पौष मास, बंगाब्द १३७३ (सन् १९७९ ई०), चतुर्थ संस्करण, आश्विन मास बंगाब्द १३७९ (सन् १९८५ई०) पंचम संस्करण, पौष मास, बंगाब्द १३८३ (सन् १९८९ ई०), षष्ठ संस्करण, आश्विन मास, बंगाब्द १३८६ (सन् १९९२ ई०), और सप्तम संस्करण भाद्रपद मास, बंगाब्द १३९१ (सन् १९९७ ई०) में प्रकाशित हुआ था। अब अष्टम संस्करण के प्रकाशन में समर्थ होकर हम अपने को धन्य अनुभव कर रहे हैं। इति-जन्माष्टमी, बंगाब्द १३९७ (सन् २००३ ई०)।

अयाचक आश्रम,
स्वरूपानन्द स्ट्रीट,
वाराणसी-२२१०१०

निवेदक
ब्रह्मचारिणी साधना देवी
स्नेहमय ब्रह्मचारी

नवम संस्करण का निवेदन

असंख्य लोगों का जीवन-गठन, प्रत्येक तरुण-प्राण को पवित्रता से सुशोभित करना, प्रत्येक मानव-सन्तान को आत्मोन्नति के समुन्नत शिखर पर आरूढ़ करना, साधारण मानव-जीवन में देवत्व का प्रतिरोपण करना, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन के भेदभाव से विरहित होकर सभी की सर्वांगीण उन्नति को साधित करना जिनके आविर्भाव का प्रधान उद्देश्य है, उन्हीं आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, प्रेमस्वरूप, नित्य सुखस्वरूप परमाराध्य अखंडमंडलेश्वर श्री श्री स्वरूपानन्द परमहंसदेव– भक्तजनों के प्राणों के देवता (भगवान) श्री श्री बाबामणि के चरण-कमलों में कोटि-कोटि भक्तिपूर्ण प्रणति निवेदन करता हूँ।

इस अमूल्य पुस्तक में प्रकाशित उपदेशों के प्रभाव से बहुत से अमूल्य जीवन सुगठित हुए हैं, विनाश के कराल ग्रास से बच गए हैं और उन्नत विचारों की सम्पदा को प्राप्त कर सके हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर भावी पीढ़ियों के तरुण, किशोर और युवा-समाज आत्म-गठन हेतु संकल्पबद्ध होगा और प्रबुद्ध नागरिक, सदाचारी मनुष्य, महामानव और दिग्दर्शक पुरुष के रूप में स्वयं को प्रकटित करने में समर्थ होगा। इसी विश्वास की आधारभूमि पर इस पुस्तक का बारम्बार प्रकाशन होता रहेगा।

आत्म-गठन पुस्तक का नवम संस्करण अष्टम संस्करण का ही हूबहू पुनर्मुद्रण है।

परम करुणामय श्री श्री बाबामणि की असीम करुणा से इस आत्म-गठन पुस्तक के नवम संस्करण का प्रकाशन करने में समर्थ होकर हमें असीम आनन्द का अनुभव हो रहा है। इति-अग्रहायण, बंगाब्द १४१३ (सन् २००९ ई०)।

अयाचक आश्रम,
स्वरूपानन्द स्ट्रीट,
वाराणसी-२२१०१०

निवेदक
ब्रह्मचारिणी संहिता देवी
स्नेहमय ब्रह्मचारी

प्रथम हिन्दी संस्करण का निवेदन

मनुष्य का शरीर प्राप्त करने के बाद भी मनुष्यत्व और मानवसुलभ गुणों को सम्यक् रूप से विकसित करने के लिए सद्गुणों का अर्जन करना पड़ता है। जैसे निम्नतर भूमि या तालाबों और नदियों में आस-पास का जल सिमट-सिमट कर एकत्रित होता

है, वैसे ही सज्जन विनम्रता और अभ्यास के द्वारा सद्गुणों को अर्जित करके जीवन को सफल और परिपूर्ण बनाते हैं। इसीलिए आज मानव-निर्माणकारी सच्ची शिक्षा की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है। इसी शिक्षा से ही मानव-गठन, समाज-गठन के साथ आदर्श राष्ट्र और विश्व का निर्माण हो सकता है।

इन्हीं मनुष्योचित गुणों के अर्जन हेतु अभ्यास और अध्यवसाय के महत्व को रेखांकित करते हुए अखण्डमण्डलेश्वर श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द परमहंसदेव ने बांग्ला भाषा में जो पुस्तक लिखी थी, उसे अयाचक आश्रम द्वारा कई संस्करणों के माध्यम से प्रकाशित और प्रचारित किया गया है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करते हुए हमें अतीव प्रसन्नता हो रही है। इसका हिन्दी अनुवाद, पुनरीक्षण और प्रूफ-संशोधन आदि वाराणसी के श्री राम कुमार गौड़ ने किया है। सहज बोधगम्य और भावस्पर्शी अनुवाद के लिए हम अनुवादक के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

आशा है, किशोर, तरुण, नवयुवक-समाज के साथ ही अभिभावक और शिक्षकगण भी इस पुस्तक की उपादेयता का अनुभव करके इससे लाभान्वित होंगे जिससे लेखक, अनुवादक, प्रकाशक-सभी का श्रम सार्थक होगा। पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक सुधीजनों और नवयुवकों द्वारा समादृत होकर हिन्दी-क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रचारित होगी।

– प्रकाशक

समर्पण

परमात्मा ने जिन्हें परम मित्र के रूप में
तरुणावस्था में भेजा था–
जिनके गुणों का वर्णन
शब्दों में कर पाना
सम्भव नहीं है–
किशोरावस्था-तरुणावस्था में ही
परलोकगत उन पवित्र-चरित
ननीलाल कुंडू की
मधुमयी स्मृति में
समर्पित।

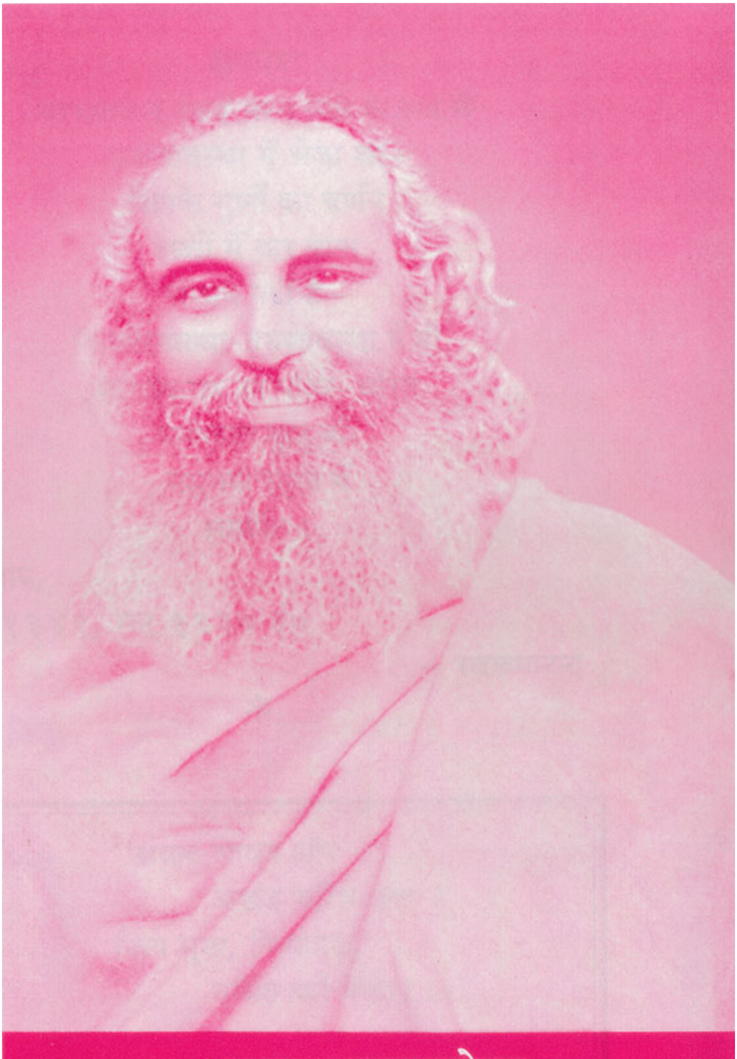
पहला माघ,
बंगाब्द १३४१, सन् १९३७ ई०

— स्वरूपानन्द

*

"संयम-साधन और
अखंड चरित्र-बल।
नित्य सुख, नित्यानन्द,
वर्धित करे केवल।।"

— श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द



अखण्डमण्डलश्वेर
श्रीश्रीस्वामी स्वरूपानन्द परमहंसदेव

ॐ
आत्म-गठन
या
ब्रह्मचर्य-प्रसंग
प्रथम अध्याय
ब्रह्मचारी कौन?

जो ब्रह्मचर्य की साधना करना चाहते हैं, उन्हें हर पल मन को जागरुक रखना होगा। कठोर साधना से जो दैहिक सामर्थ्य संचित हुई है, समग्र अध्यवसाय से मानसिक समृद्धि का जो मंदिर-शिखर निर्मित हुआ है, वह हमारा नहीं, समग्र विश्व का है। हमारे तेज, वीर्य, पौरुष, हमारी मेधा, मनीषा, प्रतिभा सभी को ही हमारे स्वार्थ की सीमा को लांघकर परहित के प्रशस्त मैदान में आ जाना चाहिए। हमारा ज्ञान, बुद्धि और कर्म-प्रेरणा सर्वतोभावेन दूसरों के प्रति समर्पित और नियोजित होनी चाहिए। ऐसा नहीं होने पर ब्रह्मचर्य के अभ्यास से हमारे देह और मन में शक्ति का जो अन्तर्निहित स्रोत और प्रवाहमान धारा बाहर प्रकटित हो रही है, उसका अस्तित्व महिमाहीन और व्यर्थ हो जाएगा।

ब्रह्मचारी कौन है? वही जो सदा-सर्वदा, ब्रह्मतत्व में अटल भाव से विचरण करता है। शाश्वत, सनातन, सर्वव्यापी, सर्वप्राण स्वरूप ब्रह्म-सागर में डूबे रहकर जो अपने जन्म-कर्म-जीवन को सार्थक कर पाते हैं, वे ही ब्रह्मचारी हैं।

किन्तु ब्रह्म क्या है? इसे कोई बता नहीं सकता। सच्चा मनुष्य हो सकने पर कोई ब्रह्म को देख सकता है, किन्तु किसी को

दिखा नहीं सकता। अनन्यचित्त वाला प्रार्थी होकर अन्तरतम के गुप्त निगूढ़ तल में उन्हें प्राप्त कर सकता है किन्तु उनके स्वरूप की व्याख्या नहीं कर सकता। इसी कारण उन ब्रह्म के सम्बन्ध में सैकडों लोगों ने सैकड़ों बातें कही हैं, आंशिक सत्य में आंशिक असत्य का मिश्रण करके अपने-अपने मत के अनुसार उनका वर्णन किया है और सर्वत्र पारस्परिक विरोध उत्पन्न करके परवर्ती विचारों और संस्कारों के अनुयायियों के लिए धर्मान्धता, कट्टरता और परमत-असहिष्णुता की पूँजी को उत्तराधिकार में पाकर विश्व के लोगों ने अनेक बार अनेक प्रकार के विप्लव, विध्वंस, प्लावन और प्रलय उपस्थित किए हैं।

इसीलिए, मैं उन व्यक्त-अव्यक्त, सूक्ष्म-विराट, चराचर ब्रह्म की व्याख्या करने का साहस नहीं करता। परमत-खंडन की आकांक्षा नहीं रखकर, उनके बारे में मुझे जब, जैसा बताना अच्छा लगेगा, तब मैं उनके संबंध में वैसा ही कहूँगा, उनकी व्याख्या नहीं करूँगा। प्रणालीबद्ध युक्ति और तर्कों के मापदंड से उन्हें एक निर्दिष्ट दार्शनिक ढाँचे में आबद्ध नहीं करूँगा। जब वे मेरे निकट प्रकट होंगे, तब मैं उनके व्यक्तित्व के बारे में बताऊँगा। जब वे अव्यक्त या अप्रकट रहेंगे, तब उन्हें हृदयस्थ समझकर अन्तरतम में ही रखूँगा। जब वे स्थूल होकर मेरी स्थूल दृष्टि के अनुरूप रूप धारण करके अवतरण करेंगे, तब मैं सूक्ष्म विचारों का सम्बन्ध नहीं रखूँगा। जब वे सहज स्वरूप में आएंगे, तब कठोर और दुरूह पथ पर नहीं चलूँगा। जब वे सचल विग्रह धारण करके आएंगे, तब मैं उनके नूपुर-ध्वनि-गुंजित सुन्दर चरणों के हावभाव का चित्र ही अंकित करूँगा। फिर, जब वे अचल आनन्द रूप में किसी गहन अभिप्राय में

रहेंगे, तब मैं अपना चंचल, सुन्दर कंठस्वर बन्द रखूँगा। कब क्या देखा, कब क्या समझा और कब क्या कहा– इन सबके आकस्मिक रूप से प्रतीयमान विरोधाभासों के साथ सामंजस्य बैठाने का प्रयत्न करके तर्कसम्मत विचार होने का हिसाब नहीं रखूँगा। मैंने उन्हें जैसा समझा है, यदि तुम भी उन्हें वैसा ही समझो, तो यह अतीव आह्लाद की बात होगी। किन्तु यदि अपनी अनुभूति के प्रत्यक्ष विचार से मेरी समझ को भ्रमपूर्ण कहकर खारिज करना चाहो, तो उस पर भी मैं प्रतिवाद नहीं करूँगा।

मैं उन्हें ही ब्रह्म समझता हूँ, जो मेरे प्रियतम हैं, जिनसे प्रेम करना मुझे अच्छा लगता है, जिनके बारे में बातें करके मुझे सुख मिलता है, जिनके बारे में चिन्तन करके भावावेश हो जाता है, जिनको देखकर ही मैं मतवाला हो जाता हूँ और जिनको पाकर मैं अहंशून्य होकर भाव-विभोर हो जाता हूँ, वे ही मेरे ब्रह्म हैं। जिन्हें 'यह शरीर दे दिया है'– यह सोचकर ही रोमांचित-पुलकित हो उठता हूँ,'यह मन सौंप दिया है'– इस विचार से ही आनन्द-विभोर हो जाता हूँ– जिन्हें 'अपना परम आत्मीय और परम जीवनसार' कहकर पुकारने से भी उन्हें और भी परमात्मीय कहकर पुकारने की साध होती है तथा जिन्हें सर्वस्व दे देने पर भी और भी अधिक देने की इच्छा होती है, वे ही मेरे ब्रह्म हैं। जिनकी बातें या प्रसंग स्मरण आने से विश्व की समस्त सुखराशि तुच्छ प्रतीत होती है, जिनके ऊपर दृष्टि पड़ने से शयन-काल में भी नेत्र बन्द नहीं होते, जिन्हें पल भर में जननी की तरह प्रेम करता हूँ, तो पल भर में ही संतान की तरह प्रेम करता हूँ। जिन्हें कभी आकाश की विराटता में देखकर विवश हो उठता हूँ, तो कभी सप्तरंगी इंद्रधनुष से रंजित देह में देखकर आकुल

और अधीर हो जाता हूँ, वे ही मेरे ब्रह्म हैं। जिन्हें सुख में पाकर सुखी होता हूँ, जिन्हें दुःख में पाकर सुखी होता हूँ, जिनके आलिंगन से हृदय में कांटे की नोंक बिंधने की तरह कातर नहीं होता, जिनसे आदर-दुलारपूर्वक पीड़ित होकर सभी अंगों की ग्रंथियों के सन्धिच्युत होने की पीड़ा के समान व्यथित नहीं होता, मैं उन्हें ही देखता हूँ और जो मुझे देखते हैं– वे ही मेरे ब्रह्म हैं। जो मुझे देखते समय मेरे रूप-गुण का कुछ भी विचार नहीं करते, जाति-कुल की खोज नहीं करते और जिन्हें देखते ही अपनी उच्चता-नीचता, सामर्थ्य-असामर्थ्य, गुण-दोष, कुल-शील, मान-अपमान मैं अपने आप ही भूल जाता हूँ– वे ही मेरे ब्रह्म हैं।

किन्तु मेरे प्रियतम कौन हैं, क्या उन्हें जानते हो? जिसे विश्व के सभी आश्रयदाता 'दूर हटो-दूर हटो' कहकर भगा चुके हैं, विशाल वट-वृक्ष ने जिसके पास से अपनी छाया हटा ली है, आकाश के मेघों ने जिसके पास से जलवृष्टि हटा ली है, मलय-समीर ने जिसके अंग-स्पर्श का परित्याग कर दिया है, फिर भी मेरा यह जला-भुना प्राण उन्हें ही प्रेम करने में सुख पाता है। जो लोग निराशा से अवाक् हो चुके हैं, निपीड़न या सताए जाने से टूट चुके हैं, किसी की प्रीति-शुभेच्छा से वंचित हो चुके हैं, निन्दा-अपमान से लांछित हो चुके हैं, उन लोगों की करुण-कथा ही तो मेरे मुख और हृदय में समाई है, जो लोग अवसाद में पड़कर आत्मशक्ति का दुरुपयोग कर चुके हैं, असत्य में पड़कर आन्तरिक सारतत्व को खो बैठे हैं, मेरा मन-प्राण उन्हीं लोगों के चिन्तन में डूबना चाहता है। किस विद्युत्-स्पर्श से उनका अवसाद दूर होगा, किस संजीवनी-मंत्र से उन लोगों के भीतर अमर जीवन जाग उठेगा, किस कर्म का

आवाहन उन लोगों के आलस्य से जड़ीभूत अन्तरात्मा को दलित-मथित करके आत्म-स्मृति और आत्म-शक्ति प्राप्ति हेतु निद्रा-भंग करेगा, किस जीवन-चरित के रसायन से उनकी बर्बादी की क्षतिपूर्ति करनी होगी और कौन सी श्रेष्ठ उच्चाकांक्षा उन लोगों के भावी अपव्यय को अवरुद्ध करके तेज, ऊर्जा, शक्ति, सामर्थ्य का संचार करके दूसरों के तलवे चाटने वाली मनोवृत्ति को विनष्ट करेगी, किस सत्य की ज्योतिर्मयी प्रतिभा से उन लोगों का सारा असत्य-अज्ञान प्लावन-जल में बह जाएगा– मैं इन्हीं भावों-विचारों में विभोर ही रहना चाहता हूँ। धर्म के प्रति जिन लोगों की श्रद्धा भंग हो गई है, ज्ञान के प्रति जिनमें अवज्ञा भाव आ गया है, प्रेम से जो लोग विद्वेष करने लगे हैं, उन लोगों के समस्त अश्रद्धा, अवज्ञा, अप्रेम को स्नेह-स्पर्श से दूर करके जिस दिन उन लोगों के हृदय के भीतर मैं अपने को पाऊँगा, उसी दिन मैं यथार्थ रूप से अपने को अहंशून्य, विदेह और भाव-विभोर कर पाऊँगा। जो लोग उठ सकने की शक्ति में भी उठना नहीं चाहते और जो लोग जागना चाहने पर भी जाग नहीं पा रहे हैं, उन्हीं लोगों के लिए ही तो देह-मन समर्पित करके मैं अपनी आत्मा की चरम चरितार्थता को प्राप्त करता हूँ। ये लोग ही तो मेरे मुख की ओर देख रहे हैं, करुण विनती से युक्त मौन-वेदना को आतुर आग्रह से बारम्बार मेरे पास भेजते रहते हैं, लालायित भाव से मेरी ही प्रतीक्षा करते रहते हैं।

ये लोग ही मेरे ब्रह्म हैं– ये लोग ही मेरे ईश्वर हैं। ये लोग ही मेरे सर्वदेवाधिदेव विश्वनाथ हैं। ये लोग ही मुझे अचूक भाव से देखते-चाहते हैं, इसीलिए मैं इन सभी का हूँ और ये सभी मेरे हैं। फिर इन लोगों की खोज में जो लोग सदा-सर्वदा विचरण करते हैं,

मेरे मत से वे ही ब्रह्मचारी हैं। इन दुर्दशाग्रस्त, कंगाल, दुर्बल, श्रीहीन अनन्तकोटि लोगों के दुर्भाग्य को दूर करने के लिए ही जो अटल दृढ़ता से अपना बहुमूल्य जीवन समर्पित कर चुके हैं, वे ही सच्चे ब्रह्मचर्य-अभ्यासी हैं। इन लोगों के अनैतिक जीवन के दुर्निरीक्ष्य अंधकार में पवित्रता की ज्योति बिखरने के लिए जो दुःस्वप्न देखकर वापस नहीं आते, दुस्साध्य समझकर हताश नहीं होते, दारिद्रय-दहन में संकुचित नहीं होते, बदनसीबी या दुर्भाग्य की दिगन्त-प्रसारी बाधाओं के सामने सिर झुकाकर दासत्व नहीं स्वीकार करते, वैसे ही स्वाधीन चित्त, स्ववश, स्वभाव में सुस्थित, निर्भीक और आलस्यहीन लोग सच्चे ब्रह्मचारी हैं।

हे बुद्धिमान! आज तुम अपने हृदय में साहस का संचार करो, बाहुओं में बल का संचार करो, अपने मस्तिष्क में आनन्दमय बुद्धि का संचार करो। विश्व के निरपेक्ष कल्याण हेतु तुम्हें प्रमादरहित, निर्भय और निर्विकार होना होगा। देशों में व्याप्त कलह-कोलाहल के असंतोष का नाश करने हेतु तुम्हें अटूट आनन्दपूर्वक आत्म-दान करना होगा। तुम्हें ही अपनी सशक्त भुजाओं की आत्म-सुस्थित क्षमता से दीनहीन-दलित, दासता से पीड़ित और दुखों से मथित देह-मन वालों के असंतोष-भार को हल्का करना होगा। वीर-विहीन भारत के वक्षस्थल पर आज तुम स्वयं को ही वीर-बलवान हाथी के समान समझो, जननी को बहुत दिनों बाद वीर-प्रसविनी के रूप में गौरव करने का अवसर दो; भाई-बन्धुओं की प्रशंसा में देश भर के सभी भाई-बहनों के मुखमंडल को हर्षोज्ज्वल होने का सुअवसर प्रदान करो। आज मत भूलना कि वीरता और वीरता का अभिनय एक ही वस्तु नहीं है। ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य का अभिनय एक ही वस्तु

नहीं है। विश्व-कल्याण के लिए ऋषियों के मस्तिष्क से जीवन-गठन के जो अद्भुत उपाय उत्पन्न हुये थे, आज उनका अभिनय करके तृप्त हो जाने से, आत्म-वंचना (धोखा) करने से काम नहीं चलेगा। आज सचमुच ही यह समझना होगा कि किसी प्रकार से, युक्ति-कौशल से, शरीर में स्थित वीर्य के बाहर निकलने का मार्ग बन्द कर पाने से ही ब्रह्मचर्य पूरी तरह सुरक्षित हो गया, ऐसी बात नहीं है। प्रयत्नपूर्वक संचित वीर्य ने देह को जो कान्ति, पुष्टि और पौरुष प्रदान किया है, विश्व-कल्याण के महायज्ञ में उसकी आहुति देने का नाम ही ब्रह्मचर्य है।

*

द्वितीय अध्याय
ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा-भूमि

ऋषियों की शक्ति से शासित भारत यह जानता था कि मनुष्य का समग्र जीवन ही एक साधना है, अत: उसके जीवन का प्रत्येक अंश भी एक-एक विशिष्ट साधना है। इसीलिए उनके लिए ब्रह्मचर्य और संन्यासादि जैसे साधना या तपस्या के रूप में गिने जाते थे, वैसे ही गार्हस्थ्य भी तपस्या का एक अंग था। केवल यही नहीं, भारतीय शास्त्रकारों ने हजारों बार गार्हस्थ्य-धर्म को संन्यासी या यति के धर्म की अपेक्षा अधिक धैर्य के साथ विवेचन और अनुशीलन किया था। उसके ही परिणामस्वरूप, सारे भारत में एक अपूर्व मानवता ने वंशानुक्रमिक रूप से विकसित रहकर भारत का मान-यश और भारत की गौरव-प्रतिष्ठा का गठन किया था।

परन्तु, सच्चे अर्थों में जीवन का कोई भी एक अंश दूसरे अंश की तुलना में श्रेष्ठ या निकृष्ट नहीं है। प्रत्येक ही अपनी-अपनी जगह पर श्रेष्ठ है। बालक या युवक की तुलना में वृद्ध के ज्ञान, अनुभव में अधिक होने के कारण ही बाल्यकाल या युवावस्था, वृद्धावस्था के सामने हीन या तुच्छ होगी-ऐसी बात नहीं है। बाल्यकाल बचपन की सरलता से ही सरस है, युवावस्था यौवन के गौरव से ही उज्ज्वल है और वृद्धावस्था वार्द्धक्य की महिमा से ही उन्नत है। इनमें छोटे-बड़े, श्रेष्ठ-निकृष्ट का भेद-विचार नहीं उठता। प्रकृति की शारदीय शोभा के झरकर गिर जाने से ही नूतन बसन्त ऋतु का प्रफुल्ल यौवन आता है, इस कारण शारदीया प्रकृति का गौरव कम

नहीं हो जाता। बाल्यकाल के अवसान से यौवन का प्राण-संचार होता है, यौवन समाप्त होकर वार्द्धक्य को जन्म देता है, पूर्ववर्ती के आत्म-दान के बिना परवर्ती का आवाहन होता ही नहीं। ब्रह्मचर्य की भी साधना के इसी तरह परवर्ती गार्हस्थ्य-साधना के लिए साधक के जीवन को सर्वतोभावेन तैयार करने के कारण ही ब्रह्मचर्य का गौरव है। गार्हस्थ्य की सच्ची तपस्या द्वारा साधक को सर्वस्व त्याग के महामंत्र में दीक्षित करके वृहत्तर विश्व-कल्याण में समग्र रूप से आत्मसमर्पण करने की योग्यता प्रदान करने के कारण ही गार्हस्थ्य का सम्मान है। पूर्ववर्ती साधनाएँ किसी भी तरह पूर्ण रूप से प्रस्फुटित नहीं हो सकतीं, अतएव समग्र जीवन रूप जो समष्टि-साधना है, वह व्यष्टि-अपूर्णता से पंगु बनकर रह जाती है। इसीलिए प्रत्येक साधना, अपनी-अपनी जगह पर अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में, अपने-अपने आदर्शानुकूल प्रयोग में श्रेष्ठ है। गार्हस्थ्य या संन्यास, इनमें कौन श्रेष्ठ है या कौन निकृष्ट है, इसका विचार एक के साथ दूसरे की तुलना करके करना सम्भव नहीं है। यथार्थ रूप में और ठीक ढंग से किसका सूत्रपात या प्रारम्भ हुआ था, कौन पूर्णतः प्रतिफलित हुआ था, किस तपस्या ने जीवन के निर्दिष्ट अंगों की दृढ़ता और उपयोगिता को अपने भीतर कितने स्थायी ढंग से बढ़ाया है, इसके निर्णय के ऊपर ही इनकी श्रेष्ठता निर्भर होती है, अर्थात् तपस्या के हिसाब से कोई भी छोटा नहीं है किन्तु प्रयोग के हिसाब से पात्र-विशेष में से एक छोटा है, दूसरा बड़ा है अथवा दोनों ही छोटे हैं या दोनों ही बड़े हैं।

तथापि, धरती पर आने के बाद ही शिशु जननी का अथवा इनके अभाव में गो-माता या धात्री का स्तनपान करके जिस प्राण की

रक्षा करता है, वर्धित आयु में समग्र विश्व के खाद्य पदार्थों का आहरण करके भी उसी प्राण की रक्षा करने पर भी, जिस प्रकार शैशव में पीए हुए दूध का मूल्य हम लोग श्रद्धा की मुद्रा के रूप में अधिकाधिक देते रहते हैं, उसी प्रकार बचपन में जीवन-गठन के कार्य में जिस साधना ने सर्वप्रथम दिग्दर्शन किया एवं जिस साधना ने भावी गार्हस्थ्यादि साधना की सार्थकता की सम्भावना को सहज बना दिया, उसका मूल्य हम लोग अधिकाधिक रूप में देना चाहेंगे। भारतीय शास्त्रकारों द्वारा गार्हस्थ्य-साधना की सैकड़ों मुखों से प्रशंसा किए जाने पर भी जब ब्रह्मचर्य-साधना के बिना पूर्णांग गार्हस्थ्य असम्भव है, तो हम लोग ब्रह्मचर्य-साधना की ही जय-जयकार करेंगे। फिर उन लोगों ने गार्हस्थ्य-साधना की जो प्रशंसा है, इसे भी हम हजारों बार कहेंगे।

बस, इतना ही, अन्यथा यदि ब्रह्मचर्य केवल ब्रह्मचर्य के लिए ही हो, तो इस समय के 'कला कला के लिए'– श्रेणी के साहित्य-सेवियों की तरह ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य सभी देशों और विश्व का मंगल चाहने वालों के लिए प्रतिकूल समालोचना का ही विषय होकर रहेगा। इसके पूववर्ती अध्याय* में मैंने जिसे ब्रह्मचर्य के रूप में समझा और समझाया है, इस लेख में ठीक वैसा नहीं समझता हूँ। ब्रह्मचर्य कहने से जिस प्रचलित अर्थ का व्यवहार किया जाता है, उसी अर्थ में मैं यहाँ इस शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। पूर्ववर्ती प्रसंग में ब्रह्मचर्य के रूप में हमारी समग्र जीवन साधना को ही मैंने निर्दिष्ट किया है, अर्थात् संयम का अभ्यास, उससे प्राप्त शक्ति-सामर्थ्य का

---

* मूल लेख में 'अध्याय' और 'लेख' की जगह 'पत्र' शब्द का उल्लेख था।

उपयोग और उपयोग का आदर्श– इन्हीं सब को लेकर उस ब्रह्मचर्य से मानव के नित्य और नियमित, दैनिक और आकस्मिक तथा जन्म-जन्मान्तर की साधना को समझाया गया है। किन्तु यहाँ ब्रह्मचर्य कहने से वह व्यापक अर्थ न लेकर तुम लागों की सुविधा के लिए, तुम लोगों के चिरकाल के सुपरिचित अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ। ब्रह्मचर्य कहने से यहाँ मैं वीर्यधारण, वीर्यरक्षा या शुक्रक्षय-निवारण को ही समझता हूँ।

भगवान की विशेष करुणा से वर्तमान समय में देश में प्राय: सर्वत्र ब्रह्मचर्य के प्रसंग को लेकर कमोबेश कोलाहल होता हुआ देख रहा हूँ। किन्तु यह कोलाहल अभी भी हमारे समग्र कल्याण को जाग्रत नहीं कर पा रहा है। इसका कारण यह है कि अनेक स्थलों पर ब्रह्मचर्य का एक अभिनय चल रहा है और कई जगहों पर ब्रह्मचर्य केवल ब्रह्मचर्य के लिए ही अनुष्ठित हो रहा है। रूखे-सूखे केश रूखे-सूखे केशों के लिए ही सुरक्षित हो रहे हैं, तेल-जूता-चप्पल आदि का वर्जन एकमात्र इनके वर्जन हेतु ही हो रहा है। वृहत्तर विश्व की वृहत्तर परिस्थितियों के सृजन या निराकरण में यह ब्रह्मचर्य कार्यक्षम नहीं हो रहा है। मुझे टाइटॉनिक की तरह का एक विशाल जलयान दे दो किन्तु यदि मैं यह निर्णय नहीं कर सकूँ कि जलयान किस दिशा में ले जाऊँगा और किस बन्दरगाह पर उसे रोकूँगा, तो जलयान पाने या न पाने में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। इसी तरह जो ब्रह्मचर्य व्यक्ति के जीवन में निरर्थक है (क्योंकि उसने व्यक्ति के जन्म-कर्म को परहित में सार्थक करना नहीं सिखाया) एवं जो राष्ट्र के कंधों पर भारी बोझ और विवशता है, (क्योंकि सैकड़ों जगहों पर इसने अकारण कर्महीनता और भिक्षुक-वृत्ति को ही प्रश्रय दिया है)

उसके द्वारा हम लोग क्या करेंगे? उससे हमारा या दूसरों का कौन सा कल्याण सृजित होगा? फिर अभिनीत ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य है ही नहीं और वह कदापि, किसी भी काम नहीं आएगा, इसे कौन नहीं समझता? पेड़ के पत्तों पर स्वेद-कणों को देखकर हम उसे शिशिर कालीन ओस की बूँदें समझने की भूल कर सकते हैं और जाड़े में होंठों के फटने को दूर करने हेतु उसे सादर होंठों पर मालिश भी कर सकते हैं, किन्तु शिशिर के ओसकणों से भी होठों का फटना नहीं थमेंगा। शिशिर के ओसकण समझकर जब तक हम पेड़ के पत्तों या घास के स्वेद-कणों को फटे होंठों पर लगाएँगे, तब तक सीधी-सरल बात भी ठीक-ठीक नहीं कह सकेंगे। सैकड़ों इच्छाएँ होने पर भी देह के बारे में कुटिल या वक्र बातें ही आएँगी। हम हमेशा खुले नेत्रों से अभिनय को समझ नहीं सकते। दूसरों के अभिनय की बात तो दूर, कई बार हम स्वयं अपने अभिनय को समझ नहीं पाते, प्रथम दृष्ट्या अपनी नाकामी दृष्टिगत नहीं होना चाहती। तथापि यह ध्रुव सत्य है कि अभिनय तो अभिनय ही है। फिर भी, एक बात यह है कि सत्य का अभिनय सत्याश्रित अभिनय और मिथ्या का अभिनय मिथ्या-आश्रित अभिनय होता है अर्थात् पूर्व पक्ष में मिथ्या सत्य को चाहता है और दूसरे पक्ष में मिथ्या एकमात्र मिथ्या को ही चाहता है। मिथ्या यदि सत्य को चाहे, तो एक दिन भगवान की विशेष करुणा अनुभूत या अवतीर्ण होने पर अपनी हीनता को छोड़कर अर्थात् अपना स्वभाव परिवर्तित करके वह सत्य में ही लीन हो सकता है। मिथ्या यदि मिथ्या को चाहे, तो उससे शत-कोटि मिथ्या ही उत्पन्न होता है और वंश-वृद्धि की प्रबलता से वह विश्व में छा जाता है तथा मनुष्य की समग्र सुख-शांति को कामोद्दीपक विष की तरह आच्छन्न कर

लेता है। सत्य के, सुन्दर के, अभिनय के बारे में मात्र इतना ही कहना है। किन्तु जहाँ लाखों में एक अपवाद देखा गया है, वहाँ उस अपवाद के ऊपर जोर देकर या विश्वास-आस्था समर्पित करके, मिथ्या का व्यापार करके, मिथ्या का ही क्रय-विक्रय करने का सभी लोगों का दुस्साहस नहीं होता और यह नहीं रहना ही अच्छा है क्योंकि अभिनय तो अभिनय को छोड़कर कुछ भी नहीं है।

अभिनीत जीवन में भावावेग आ सकता है, प्रतिष्ठा या सच्चा सम्मान नहीं आता। दैनन्दिन जीवन में मिथ्या की दासता करके अनन्त जीवन में सत्य रूप को नहीं पाया जा सकता। इसीलिए, देश में ब्रह्मचर्य के कोलाहल में भी कुछ अधिक आह्लाद या उल्लास नहीं है।

आज के समाज में अभिनय का अवश्य ही अभाव नहीं है किन्तु यही कहकर प्रचलित अभिनयों की दुहाई देकर और भी दो-चार अभिनयों को प्रचलन में लाने का अधिकार किसी को भी नहीं है। राम गांजा पीता है, इसलिए उसे मदपान की स्वाधीनता नहीं दी जा सकती; यदु चोरी करता है, इसलिए उसे डकैती डालने का लिखित अधिकार-पत्र देने से काम नहीं चलता। गांजा भी बंद करना होगा, चोरी को भी रोकना होगा। जो पढ़ाकू बालक दिनरात माँ के ऊपर निन्दा-लांछना करके विवाह योग्य आयु में अचानक मातृभक्त हो उठता है और सांसारिक कामकाज में भारी दवाब से माँ का स्वास्थ्य खराब होने की बात कहकर जिसके नेत्रों से अश्रु गिरने लगते हैं, वह बालक अभिनय ही तो करता है। जो विधुर व्यक्ति मातृहीन बाल-बच्चों के पालन-पोषण के लिए वृद्ध आयु में सिर पर दूल्हे का सेहरा रखकर विवाह करना ही एकमात्र कर्तव्य समझता है

और उस तरह की अपनी इच्छा नहीं रहने पर भी शुभचिन्तकों-मित्रों के प्रबल आग्रह के वश में होकर ही मनुष्य-जीवन के और भी कई कर्तव्यों को बाद में पूरा करने के लिए लोहे की संदूक में ताला लगाकर पुनर्विवाह रूप आकस्मिक कर्तव्य को ही पहले पूरा करता है, वह एक बहादुर अभिनेता है। देश के दुख-कष्ट से मानो अभी प्राण निकल जा रहा है, ऐसी तड़प और व्याकुलता को लेकर जो देश-सेवा-व्रती सहस्राधिक देशवासियों के मन में भावावेग जाग्रत करने के बाद अचानक एक दिन अनासक्त बनकर, अलग होकर इसे 'मत के परिवर्तन की प्रतिभा का ही प्रमाण' बताते हैं, उनके कार्य में भी कोई कम अभिनय नहीं है। घास-पात से लेकर विशाल वृक्ष तक सभी नक़ली पुष्पों से पुष्पित होना चाहते हैं, आज के समाज की ऐसी ही हालत है अथवा समाज की यथार्थ स्थिति इससे भी अधिक भीषण ओर निन्दनीय है। जैसे तरंग देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि समुद्र की जलधारा किधर जा रही है, वैसे ही आज हमारे समाज को भी देखकर उसके प्रवाह की दिशा को समझा नहीं जा सकता। जब समुद्र की तरंग घूम-घूम कर एक ओर से दूसरी ओर जाती है, तब भी उसकी जल-गति ऊपर से नीचे की ओर जाती रहती है। मोह-अंधकार से आच्छादित हमारा समाज जब अनेक चीख-पुकार के बाद भी फिलहाल करवट बदलकर सो गया, तब उसकी जो प्रवाह-गति तीर-वेग से ऊपर से नीचे की ओर जाती है, उसे हम कैसे समझेंगे? समाज रूपी वन फल-फूल रहित बन्ध्या वृक्षों के समूह से भरा है। आज इसकी इस हालत को बदलना तो पड़ेगा ही। किन्तु इसके लिए तो अटूट बीजशक्ति चाहिए। जो वर्तमान है, वह तो भविष्य की गोद में सोता रहेगा किन्तु जो भविष्य है, वह अनन्त काल

तक अमर रहेगा। इसीलिए आज भविष्य की शक्ति को जाग्रत करने के लिए जगद्धात्री की उपासना करनी होगी। वे अपापविद्धा हैं, वे अकाम-लभ्या हैं, अक्षतयोनि हैं। वे ही उस बीजशक्ति को प्रसवित (उत्पन्न) करेंगी और उस बीजशक्ति के अक्षय आदर्श में बोए जाने पर क्रमशः यथासमय भारत रूपी उद्यान का प्रत्येक वृक्ष कल्पवृक्ष होगा और तना, शाखा, फल-फूल, जड़, पत्तों-सभी में सुन्दर, सुरूप, सरस और सुखद होगा।

ब्रह्मचर्य से जगद्धात्री की पूजा होती है, ब्रह्मचर्य से वे बीजशक्ति को उत्पन्न करती हैं। इसीलिए, जीवन-साधना के अंश स्वरूप साधना-चतुष्टय (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास) की वास्तविक महिमा को समान रूप से स्वीकार करके भी आज इस पतनोन्मुख युग की इस अंधकारमयी रात्रि में ब्रह्मचर्य का ही पक्षपात कर रहा हूँ क्योंकि आज मैं निर्भ्रान्त रूप से जानता हूँ कि ब्रह्मचर्य के प्रभात-सूर्य का उदय हाने पर यह अंधकार नहीं रहेगा और उसी सूर्य के आलोक में विश्व-ब्रह्मांड का पर्यटन करके हम संसार में अपने लोगों की खोज कर सकेंगे।

*

"आलस्य, निद्रा में अब,
बिताओ न काल ।
उठो, जागो, कर्म करो,
महिमा विशाल ।।"

तृतीय अध्याय

जागो वीर ! सबसे पहले

तुम्हें सबसे पहले जागना होगा और जब सभी लोग शय्या की गोद में मृतवत् पड़े रहेंगे, तभी से तुम्हें विश्व कल्याण-कर्म में परिश्रमशील होना होगा। निद्रा के आलस्य को सहज ही शरीर से झटक कर देह और मन को सम्यक् रूप से शिथिलता और भार से मुक्त कर लेना होगा। जो पुकारने से भी उत्तर नहीं देते, मारने पर भी जिनकी निद्रा भंग नहीं होती, उन सबकी सैकड़ों वर्षों की जड़ता को दूर करने की सामर्थ्य तुम्हें इच्छा के संकेत से संचित करनी होगी। किन्तु सामर्थ्य का संचय हाट-बाजार में नहीं होता, शक्ति की साधना निर्जन तपोवन में करनी पड़ती है।

देश का यह बड़ा दुर्भाग्य है कि आज तपोवन नहीं हैं। एक ऊँचे भग्न स्तूप में, एक धधकते मरुस्थल में, एक महिमामय महान राष्ट्र के समाधि-शयन के श्मशान-चित्र में अतीत की कितनी ही सुखद स्मृतियाँ संचित हैं। किन्तु आज तो तपोवन चाहिए! तपोवन के शान्त, सौम्य, सुन्दर चित्र को देखकर नेत्रों को तो शीतल होना चाहिए, जिसे देखने से देखना सार्थक होता है, उसके लिए मेरी आँखें सैकड़ों बार, सैकड़ों दिशाओं में देखती हैं किन्तु वे मृत्यु की शीतलता और मरुस्थल की आँधियों के गर्म कंकड़ों की यातना को नहीं सह सकती हैं। इसीलिए वे सैकड़ों बार बन्द होने के बाद भी बारम्बार तुम लोगों की ओर देखती हैं। यदि, तुम लोग भारत रूपी श्मशान के इस काल रूपी कराल और गंदे दृश्य को दूर करके

हर्षोल्लास से परिपूर्ण और हरीतिमायुक्त शोभा को ला सको, तभी उसकी (देश की) प्यास बुझेगी।

किन्तु जो लोग तपोवन बनाते हैं, उन्हें तपोवन की शान्त स्निग्धता से पुन: आत्म-जीवन गठित करना होता है। तुम्हारा तपोवन तुम्हारे तपोबल से बनेगा। तुम्हारी तपस्या के तपोवन में यदि पक्षियों के कलरव से नित्य सनातन और अभय मानव का मधुमय नाम ध्वनित होता रहे, तभी तुम्हारे द्वारा निर्मित तपोवन में कोयल और अन्य पक्षी उसी भाव से कूजन करेंगे। तुम्हारी तपस्या के तपोवन में जिस तरह मंजरी के वक्षों पर कुसुमवृन्द अर्धविकसित हुए हैं तथा जिस आकुलता से भ्रमरवृंद पुष्पों से मधु ग्रहण करते हैं, यह जान लो कि तुम्हारे जीवन के प्राणपण प्रयत्न और परिश्रम से निर्मित तपोवन में उसकी रंचमात्र भी बाधा नहीं आएगी। मनुष्य की बातों में अपवाद या उलट-फेर होता है, भविष्य का संकेत उल्टा हो जाता है, किन्तु कर्म के माध्यम से वह मनुष्य जो कुछ कहता है, तपस्या से वह जो कुछ निर्देश देता है, उसमें कोई परिवर्तन या अपवाद नहीं होता।

तुम प्रश्न करोगे कि तुम्हारी आजकल की तपस्या के लिए तपोवन कहाँ है? जहाँ तुम जीवन-गठन करोगे, वह साधना-आश्रम कहाँ है?

किन्तु उसके लिए चिन्ता मत करो। किस तपोवन में बैठकर आज तुम्हें तपोबल संचित करना है, उसका संकेत दे रहा हूँ। जान लो, यह विश्व अपने समग्र अस्तित्व में ही बिलकुल एक तपोवन है। जब तुम तपस्वी बनकर तपस्वी की दृष्टि से उसकी ओर देखोगे, तभी वह तपोवन दीख पड़ेगा। जब तुम्हारा चित्त स्थिर, मन शान्त और प्राण संयत रहेगा, तभी वह तपोवन है। जब तुम्हारी बुद्धि विनम्र, मेधा

सेवाभावी, हृदय निर्भीक रहेगा, तभी वह तपोवन है। यदि तुम्हारी तपोप्रेरणा अव्यभिचारिणी निष्ठा से दिन-रात जाग्रत रहती है, तो दिनरात 'जगदेव नन्दनवनम्' (विश्व ही नन्दन-वन के समान सुखदायक) है। यदि यह तपोप्रेरणा फिलहाल तुम्हारे ऊपर सम्पूर्णतः अधिकार करके रहे, तो उस विशेष समयावधि में ही जगत् तपोवन होगा।

किन्तु बाह्य प्रकृति की स्थिरता और चंचलता में थोड़ी साम्यता और निकटता का संबंध रहने के कारण किसी-किसी समय हमारे लिए यह विश्व प्रयास-सिद्ध तपोवन बन जाता है। ब्राह्ममुहूर्त में यह जगत् हमारे मन के लिए सहज-सिद्ध तपोवन होता है। इस समय जगत् की शान्त, स्निग्ध सरलता में मन डूबा रह सकता है और मन की चंचलतारहित सुस्थिर गम्भीरता में सारा जगत् डूब सकता है।

इसी शुभ मुहूर्त में जीवन-गठन का प्रयास करना। साधना को गुप्त रखकर तपस्या-परायण हो जाओ, फिर शरीर में बल आएगा ही, मन में उत्साह जागेगा ही और हृदय में शक्ति का संचार होगा ही। भगवान में दृढ़ निर्भरता रखकर, गुरु के उपदेशों में आस्था रखकर, आत्मशक्ति में विश्वास, विनम्र चित्त से, श्रद्धा-भक्ति से विनम्र और सरस अन्तःकरण से, संयम से शुद्ध भावविह्वलता में सभी बन्धनों की स्मृति को विस्मृत करके तपस्वी बन जाओ। यदि विश्व-कल्याण के लिए ब्रह्मचारी बनना चाहते हो, तो यह अमूल्य समय मत गवाँना। दिन भर विश्व के साथ समान गति से चलने में जो पाथेय लगेगा, उसे दिनभर के परिश्रम से ही तुम उपार्जित कर सकोगे। किन्तु ब्राह्म मुहूर्त में तुम जो कुछ उपार्जित करोगे, उसी के द्वारा तुम विश्व के सम्मुख चलना आरम्भ करो।

*

चतुर्थ अध्याय

कैसे जागूँ?

यथासम्भव और आदत के अनुसार सूर्योदय के एक से दो घंटे पहले शय्या का त्याग करना आवश्यक है। जिन लोगों ने सदगुरु का सान्निध्य प्राप्त किया है, उनके लिए साधना हेतु इससे बेहतर अन्य कोई समय नहीं है। इस समय कोंमल, मधुर, स्निग्ध वायु प्रवाहित होती है और साधकगण इसे वीर वायु कहते हैं। इस वायु के सेवन से मनुष्य के देह और मन की सारी पंगुता, दुर्बलता और जड़ता दूर होकर मृत-संजीवनी के प्रभाव से पुनर्जीवित योद्धा के समान नूतन शक्ति प्राप्त होती है। अतएव, इस समय जो लोग निश्चल निद्रा में आँखें बन्द करके समय बिता देते हैं, वे लोग जीवन रूपी समरांगण के लिए अनजाने ही भयावह प्रतिबन्धों को संचित करते हैं और नि:श्रेयस नित्यानन्द के निगूढ़ सौभाग्य से अपने को वंचित करते रहते हैं।

तुम कह सकते हो,"उठ नहीं पाता हूँ, फिर क्या करूँ? किन्तु यह बात सुनकर ही मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। तुम जब यह कहते हो कि तुम उठ नहीं सकते हो, तब तुम्हें उठना ही होगा। जिसे तुम सामर्थ्य से परे समझ रहे हो, उसे अनायास ही आत्मसात करना होगा, अन्यथा तुम्हारे जीवन से तुम्हारा भी कोई काम नहीं होगा और वह संसार के किसी काम भी नहीं आएगा। तूफान की हवाओं में भी जो लोग झंडा गाड़ना जानते हैं, उत्ताल तरंगों के सम्मुख भी जो लोग नाव की पतवार सँभाल सकते हैं, वे लोग ही सारे समुद्र की

विशालता और गहराई को अस्वीकार करके आनन्दमय का अमृत-स्पर्श बटोर कर लाते हैं और जाति-धर्म-वर्ण का भेदभाव भुलाकर उसे दसों दिशाओं में बिखेर देते हैं। तुम्हें विश्व के कार्य हेतु जीवित रहना होगा, इस जगत् में तुम्हें वीर की पोशाक में मरना होगा। तुम्हारे मुख से तुच्छ हताशा की व्यर्थ बातें सुनकर मैं भी रुक नहीं सकूँगा और तुम्हें भी मेरी बातें सुनकर रुकने से काम नहीं चलेगा। सबेरे-सबेरे सोकर उठ जाना कोई भी कठिन काम नहीं है। यदि तुममें रंचमात्र भी संकल्प की शक्ति रहे, तो निद्रा की जंजीर से मुक्त होने के लिए तुम्हें सोचना होगा? देह की निद्रा को भंग कर देना तो बिल्कुल भी कठिन नहीं है, यहाँ तक कि मन की घोर निद्रा को तोड़ना भी एक संकेत मात्र का काम है।

संकल्प की जगज्जयी शक्ति से तुम सब कर सकते हो, अभ्यास को बदलना तो एक तुच्छ बात ही है। तुम इच्छा शक्ति से विश्वामित्र की तरह नवीन सृष्टि उत्पन्न कर सकते हो। संकल्प का प्रभाव अलंघनीय होता है। जीवन के पथ पर तुम जितना ही आगे बढ़ोगे, छोटी से बड़ी सभी सफलताओं में इसका निर्भ्रान्त प्रमाण पाओगे। जैसे हाथी के बड़े-बड़े कान उसके विशाल शरीर को नहीं देखने देते, वैसे ही तुम्हारे सैकड़ों प्रकार के संस्कारों की अस्पष्ट छाया तुम्हारी दृष्टि-शक्ति को रास्ते में ही रोककर रखती है। इसीलिए तुम अपनी असीम, अखंड शक्ति को न जानकर, भ्रमवश स्वयं को क्षुद्र, दीन और दुर्बल समझते हो तथा बाधाओं को अपने से अधिक प्रबल और शक्तिशाली मानते हो। जैसे सिंह-शावक सियारिन से प्रतिपालित होकर, सियारों के संसर्ग से अपने को सिंह से उत्पन्न हुआ भूलकर, सियार-सुलभ भय से अन्य जीवों को देखते ही भयाकुल हो उठता है, वैसे ही तुम भी

आज यह भूल गए हो कि तुम ब्रह्म-वीर्य से उत्पन्न और ब्रह्म-योनि से प्रसूत हो और इसीलिए तुम ब्रह्मशक्ति के अद्वितीय अधिकारी हो।

तुम जिस क्षण यह जान जाते हो कि तुम आद्याशक्ति की संतान हो, उसी क्षण तुम्हारा संशयाकुल, दोलायमान संशय दूर हो जाएगा और तुम्हारा संकल्प सुदृढ़ होकर तुम्हारे लक्ष्य को हस्तामलकवत् (हाथ पर रखे आँवले के समान प्रत्यक्ष) प्राप्त कर लेगा। इसलिए आज इसी क्षण यह जान लो कि तुम अप्रतिद्वन्द्वी की संतान हो, तुम सर्वदा, सर्वथा जगज्जयी और विश्ववरेण्य हो। तुम्हारी प्रतिष्ठा को कोई विचलित नहीं कर सकता, तुम्हारी प्रज्ञा कभी भी अंध नहीं हो सकती, तुम्हारी प्रतिभा कभी भी स्थूल नहीं हो सकती, तुम्हारा संकल्प कभी भी निष्फल या व्यर्थ नहीं हो सकता क्योंकि तुम उनकी ही संतान हो जो अक्षय, अनन्त और सर्वशक्तिमान हैं।

इस बोध को किसी अहंकारी की दम्भोद्धत (दम्भ से अमर्यादित) अतिरंजित बात समझ लेने का कोई भी कारण नहीं है क्योंकि हमारे सत्व-रजस्-तमोगुण जिनकी एकमात्र सर्ववरेण्य शक्ति से हमारी बुद्धि-शक्ति ओर प्रतिभा-आश्रित प्रत्येक कर्म में प्रेषित किए जा रहे हैं, उन परमपुरुष को अद्वितीय समझकर प्रशंसा करना जैसी बात है, हमें उनमें ही नियोजित, उनसे ही उत्पन्न, उनमें ही संलग्न और उनमें ही सन्न्यस्त जानकर हमारी आत्मशक्ति की प्रशंसा करना भी वैसी ही बात है। उनकी ही शक्ति से शक्तिमय जानकर हम लोग अपने पौरुष का गौरव अनुभव कर पाते हैं, उनकी ही प्रतिभा से प्रकाशित जानकर हम अपनी मेधा-मनीषा की श्रद्धा कर पाते हैं। जब मेरा सब कुछ उनका है, तब अपने पर श्रद्धा करके मैं उनके ऊपर अश्रद्धा नहीं कर सकता, अपना गौरव देखकर उन्हें महत्वहीन या

गौरवहीन नहीं कर सकता।

अपने को मूर्तिमान ब्रह्मशक्ति जानकर संकल्प करो, उससे कुछ भी निष्फल नहीं होगा। शयन के समय मन के समस्त संशयग्रस्त अविश्वास को पदाघात से झटककर, प्राणों की सारी चंचलता को रोककर, सुस्पष्ट और द्विविधारहित शब्दों में दृढ़कंठ से संकल्प करो–"यह चन्द्रमा और सूर्य भी अपनी गति की कक्षा से विचलित हो जाएं, विश्व-ब्रह्माण्ड भी यदि प्रलय की बाढ़ में डूब जाए, तो भी मैं ठीक इतने बजकर इतने मिनट पर उठूँगा ही। तब देखना, ऐसा करने पर तुमको जगाने के लिए घड़ी के एलार्म की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। सुबह कोई जागकर अनुग्रह करके जगा दे, इसलिए रामा-श्यामा आदि से भी रोज अनुरोध नहीं करना होगा।

शय्या पर जाते समय विश्व के वन्दनीय महापुरुषों से सहायता की प्रार्थना करते हुए कहना "हे प्रेमावतार बुद्ध! मेरी आत्मा तुम्हारे ही समान विश्व प्रेम में प्रबुद्ध हो। हे त्यागावतार ईशु! मेरी आत्मा तुम्हारे ही समान क्रॉस के काष्ठ पर परम चरितार्थता प्राप्त करे। हे कर्मावतार मोहम्मद! मेरी आत्मा तुम्हारे ही समान सहस्रों बाधाओं से विचलित न होकर मरुस्थल में भगवन्नाम से दिव्य सुधा का वितरण करे। हे चैतन्य! हे शंकर! हे नानक! तुम लोग जिस भगवान को प्रेम करके भेदाभेद को भूल गए थे, उसी भगवान के प्रति मुझमें अबाध प्रेम संचारित हो। हे मूर्तिमान प्रताप, राणा प्रताप सिंह! तुमने जिस भावावेग से मेवाड़ के पर्वत से प्रेम किया था, वही भावावेग, वही स्वदेश-प्रेम वही स्वराष्ट्र-प्रीति मेरी हो जाए। हे गुरुश्रेष्ठ गुरु गोविन्द! जिस एकता की प्रेरणा से तुमने विरुद्ध धर्मों वाले लोगों के प्राणों में भ्रातृत्व-बोध जाग्रत करके मनुष्यों के जीवन में मनुष्यत्व-

रहित कर्मों में भी भगवान को प्रतिष्ठित कर गए, वही एकता की प्रेरणा मेरे भीतर संचारित हो। हे शिवाजी! जिस महनीय आदर्श ने तुम्हें सुखभोग के सौभाग्य की उपेक्षा करके वनों-पर्वतों-गुफाओं में शक्ति-संचार हेतु प्रेरित किया था और जिसने तुम्हें गो-ब्राह्मण-हितार्थ नियोजित करके भी पक्षपात-दोष से कलंकित नहीं किया तथा परधर्म की अवमानना हेतु उत्साहित नहीं किया, वही सुमहान आदर्श आज मुझमें संक्रमित और संचरित कर दो। और भी अन्य जो महापुरुष हैं जिन्होंने विश्व या उसके अंशविशेष हेतु निष्काम और निःस्वार्थ आत्मत्याग करके जीवन कृतार्थ किया है तथा अन्य ऐसे महापुरुष जिनका मैं नाम नहीं जानता, धाम नहीं जानता, कर्मों के बारे में नहीं जानता तथा जिन्होंने निःशब्द नीरवता में जीवों की सेवा की है, भगवान की पूजा की है, उन सभी के निकट आज मैं सहायता-प्रार्थी हूँ। भावी युगों में जो महापुरुषगण श्री भगवान की अभय-नाम वाली पताका लेकर तापमय जगत् में शान्ति और पापरत जगत् में सान्त्वना देने के लिए आएँगे, हे अजात (अनुत्पन्न) और अनागत महापुरुषगण! मैं तुम सभी से सहायता की याचना करता हूँ। तुम सभी अपनी विशिष्टता के द्वारा मुझे जगत्कल्याण की ठोस सामर्थ्य से समृद्ध करो जिससे तुम लोगों का यह तेजोमय पौरुष ही मुझे निद्रा के आलस्य से यथासमय उठा दे, जिससे तुम लोगों के जीवन की पूर्ण और अपूर्ण भुवनमंगलकारी आकांक्षा मुझे अपने कर्तव्य को भूलने न दे।''

इस तरह सात दिन नियमित और सुव्यवस्थित रूप से करके देखो, आठवें दिन सभी महापुरुषगण मिलकर तुम्हारी सहायता करना आरम्भ कर देंगे।

*

अध्याय पाँच
निद्रा-भंग के बाद

निद्रा भंग होते ही विलम्ब न करके उठ जाओ और शीतल जल से मुख और दोनों नेत्र अच्छी तरह धो डालो। कई लोग निद्रा-भंग के बाद भी बिस्तर पर पड़े रहकर टालमटोल करते रहते हैं किन्तु यह जान लो कि थोड़ी देर से निद्रा भंग होना अच्छा है, तथापि निद्रा भंग होने के बाद उठ-उठकर सोये रहना अच्छा नहीं है। जो लोग इस तरह आलस्य को स्वभावगत होने का अबसर प्रदान करते हैं, उनकी अन्ततः ऐसी हालत हो जाती है कि वे केवल शय्या-त्याग के समय भी जागते हुए भी नहीं उठते, ऐसी बात नहीं होती, अपितु जीवन के छोटे-बड़े सभी कार्यों में ही वे दुनिया भर के आलस्य को प्रश्रय देते हैं और निर्लज्ज की तरह कलंक की टोकरी को सिर पर वहन करते हुए भी हँसते हुए दुर्बलता का गौरव-गान करते हैं। विश्व के कल्याण में जीवन का उत्सर्ग करने के लिए ही तुमने ब्रह्मचर्य-व्रत का अवलम्बन किया है, यह बात सर्वदा याद रखना। अतएव, तुम्हें यह भी स्मरण रखना होगा कि तुमने अपने थके हुए शरीर को जो विश्राम दिया था, वह भी केवल आसन्न और भावी विश्व-कल्याण हेतु अपने शरीर को कर्म-सक्षम बनाने के लिए ही किया था। सो-सोकर दो-चार मधुर और सरस स्वप्न देखकर, रात बिताकर, पुनः उसी स्वप्न की स्मृति में अगला दिन भी बिता देने के लिए ही तुमने बिस्तर पर आश्रय नहीं लिया है। तुमने सुखप्रद बिस्तर से दीर्घकाल तक अपने को स्वेच्छा से वंचित रखा, जिससे क्षणिक सुख के ऊपर शाश्वत

सुख को विजयी बना सको, क्षण भर के लाभ को अनन्त लाभ के चरणों में अवनत कर सको, आभासी आनन्द को सच्चे अनन्त आनन्द में परिणत कर सको, इसीलिए तुम रात में बिस्तर पर सोए हुए थे। अतएव, जागने के बाद फिर सोने का तुम्हारा अधिकार कहाँ है, बेटा?

नेत्र-प्रक्षालन

भगवान के परम मंगलमय महान नाम का गान करते हुए जब शीतल जल से नेत्र-प्रक्षालन करो, तब मन में यही सोचना कि तुम्हारे नेत्रों की जड़ता और तन्द्रा दूर होने के साथ ही तुम्हारे लाखों-करोड़ों भाई-बहनों के नेत्रों की तन्द्रा और आलस्य भी दूर हो रहे हैं। तुम पूछ सकते हो कि इससे क्या लाभ होगा? किन्तु ऐसा न पूछकर भी एकमात्र कथनानुसार कार्य करके दो-चार दिनों के बाद तुम स्वयं इसके फायदे-नुकसान को स्पष्ट अनुभव कर सकोगे। सभी ज्ञान की तुलना में आत्म-लब्ध ज्ञान का मूल्य अधिक होता है, सभी उपदेशों की तुलना में प्रत्यक्ष अनुभव की उपयोगिता अधिक होती है। हम लोग विश्व को सूर्य-चन्द्र के प्रकाश में देखते हैं कि अपने भीतर के आलोक से पहचानते हैं?

तथापि तुम्हें समझाने के लिए सामन्यतया इतना ही कह सकता हूँ। निश्चय ही मैं जो बताने में समर्थ होता हूँ, उसे तुम स्वयं जिस दिन समझना सीख जाओगे, उस दिन उसे हजारों गुना अधिक समझ सकोगे।

पहला लाभ यह है कि जैसे सूर्यमुखी का फूल नियमित रूप से सूर्य की ओर ही मुख किए रहता है, आँधी-वर्षा या बादलों और

हवा की परवाह नहीं करता, वैसे ही तुम हमेशा देशाभिमुखी, स्वराष्ट्र के अनुकूल और विश्व-प्रसारी रहते हो। यह कोई छोटा लाभ नहीं है। मैं जब भी, जिस किसी भी भाव में क्यों न रहूँ, सदैव देश, राष्ट्र और विश्व-कल्याण के लिए ही रहूँ, ऐसा सौभाग्य कितने लोगों के भाग्य में होता है। आत्म-तुष्टि और स्वार्थसिद्धि का कुचक्र और कौशल ढूँढ़कर जिस जगत् के अधिकांश लोग नपुंसक-कायर हो गए हैं, उसी जगत् का मनुष्य होकर मैं यदि अपनी निद्रा से जागकर विश्व-वासियों की निद्रा से जागरण की बात को याद रख सका, तो क्या यह यथेष्ट नहीं है?

द्वितीयतः, मेरे छोटे-बड़े कार्यों के बीच में सभी की बात स्मरण आने से सबकी आत्मा के साथ मेरी आत्मा का सम्पर्क साधित होता है। परिणामस्वरूप, जहाँ किसी भी शक्ति– अपेक्षित कर्म में मेरी एकाकी शक्ति प्रयुक्त हो रही थी, वहाँ सभी के अनजाने ही, सभी की सम्मिलित शक्ति मेरे माध्यम से केन्द्रीभूत होकर कार्य कर सकी। इससे मैं भी सशक्त हुआ और मेरा कर्म विशेष भी सुचारु सम्पन्न हुआ। जहाँ मेरी एकाकी सुख-शान्ति एकमात्र मुझे ही तृप्त करके चरितार्थ हुई थी, वहँ विश्व भर के लोगों की चरितार्थता को पाकर मेरी सुख-शान्ति ने मुझे गौरव और महत्व प्रदान किया।

इस संकेत विशेष के आधार पर हिसाब लगाने पर मेरे खाते में लाभ के कितने अंक जमा होते जाते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं। किन्तु उसे यहाँ रहने दीजिए। सारांश यह है कि विश्वजनीन चिन्तन के अभ्यास द्वारा किस प्रकार कल्याण होता है, इसका एक सप्ताह तक अभ्यास करने पर तुम स्वयं समझ सकोगे, एक मास अभ्यास करने पर तुम्हारे स्वजन-मित्रगण भी उसे समझ सकेंगे और एक वर्ष

अभ्यास करने पर रास्ते के अपरिचित-अनजान तुच्छ लोग भी उसे समझने में समर्थ होंगे। अतएव, प्रत्येक कार्य में तुम विश्व को अपने भीतर ले आओ और अपने को विश्व के भीतर ले जाओ।

मल-मूत्र-त्याग

स्वाभाविक वेग उपस्थित नहीं होने पर मल-मूत्र-त्याग के लिए कृत्रिम वेग को उत्पन्न या प्रयोग करना कभी भी करणीय नहीं है। इससे निरर्थक पेशीय उत्तेजना उत्पन्न होती है और परवर्ती प्रतिक्रियाओं से पेशीय शिथिलता उत्पन्न होती है। इसलिए यथासमय स्वाभाविक वेग लाने के अनुकूल अभ्यास को अच्छी तरह कर लेना। शौचालय में जाने के कुछ समय पहले सीधे खड़े होकर अथवा मल-त्याग के समय जिस तरह बैठना चाहिए, वैसे ही बैठकर, निःश्वास-प्रश्वास को यथासमय धीमा करके मलद्वार पर कुछ क्षण मन को स्थिर करने से ही स्वाभाविक रूप से मल-वेग आएगा। मन की स्थिरता की शक्ति अचिन्त्य है। जहाँ शारीरिक प्रयत्नों से कार्य में सफलता नहीं मिलती, वहाँ मनःशक्ति के प्रभाव से अनायास ही कार्य सम्पन्न हो जाता है। बाहरी वायु को भीतर खींचकर पेट के निचले हिस्से की वायु और पाचनतंत्र पर दबाव डालकर मल उत्पन्न करने का प्रयत्न सर्वत्र सफल नहीं होता और हर समय स्वास्थ्य और वीर्य-रक्षण के लिए हितकर भी नहीं रहता, अपितु इससे कभी-कभी बड़ी तेज पीड़ा भी उत्पन्न हो जाती है। मन को स्थिर करने का कौशल विशेष जानते रहने पर केवल मन की ही सहायता से किसी भी अंग-प्रत्यंग अथवा इन्द्रियों को इच्छानुसार गठित और परिचालित किया जा सकता है। अतएव, मल-वेग लाने के लिए किसी भी प्रकार की दवा के प्रयोग

या शारीरिक कसरत की अपेक्षा मन रूपी मल्लाह के पास ही देह रूपी नौका की पतवार छोड़ देना अधिक बुद्धिमानी का काम है। वायु को अनुलोम किये बिना कभी भी कोष्ठ निम्नाभिमुखी नहीं होता। नीचे के अंग पर मन को स्थिर करने के द्वारा वायु का अनुलोम हो जाता है। अतः, यथासमय मलाशय से मल निकल जाता है।

कुछ दिनों के अभ्यास के द्वारा मानसिक शक्ति का थोड़ा उत्कर्ष नहीं होने पर सामान्य समय के दौरान मल-वेग उत्पन्न नहीं होता। इसलिए, इस स्थिति में प्रारंभिक अभ्यासी का यही कर्तव्य है कि वह कुछ समय मलद्वार पर मन स्थिर करने के बाद ठीक निर्दिष्ट समय विशेष पर शौचालय में जाकर बैठे। मल निकासी हो या न हो, उपयुक्त समय तक प्रतीक्षा करके वह यथा रीति शौचादि सम्पन्न करके वापस आ जाए। कई लोग मल-निकासी नहीं होने पर जल से मलद्वार को बिना धोए ही चले आते हैं। यह नितान्त स्वास्थ्य-प्रतिकूल कार्य है क्योंकि मलत्याग की इच्छा से बैठने के समय अनिच्छा के बावजूद कुछ कुंथन (कूंथना) होता ही है। उस कुंथन के परिणामस्वरूप निम्नोदर, मलद्वार और मूत्राशय आदि के स्नायुओं में संकुचन और फैलाव होता है और उससे एक उत्तेजना उत्पन्न होती है। शीतल जल से प्रक्षालन के द्वारा इस उत्तेजना के शान्त नहीं होने से यही अन्यान्य परवर्ती कारणों से मिलकर निरर्थक वीर्य-क्षरण का रास्ता खोल देते हैं।

मल-त्याग के समय के नियमादि

अनावृत शरीर से मल-त्याग निषिद्ध है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मलमूत्रादि से निकले दूषित वाष्पादि के साथ शरीर

का संस्पर्श होने से देह अस्वस्थ हो सकता है। आँख, मुख, नाक, कान आदि के छिद्र-पथों से और रोमकूपों द्वारा विषाक्त वाष्पपुंज देह के भीतर प्रविष्ट होकर शरीर का बहुत अनिष्ट कर सकते हैं। दूसरा कारण यह है कि हमारे उपयुक्त ढंग से ध्यान नहीं देने पर व्यायाम की ही तरह आहार और मलत्याग दोनों ही श्रमसाध्य हैं। बिलकुल उन्मुक्त वायु के सम्पर्क में कोई भी कार्य करने की स्थिति में सामान्यतया शरीर को कम से कम एक पतले कपड़े से ही ढककर रखना चाहिए।

ऊपर और नीचे के दोनों जबड़ों के दाँतों को मजबूती से भींचकर (आपस में जोड़कर) मलत्याग करना चाहिए। इससे दंत-रोग दूर होंगे, दन्त-मूल मजबूत होंगे और सिर में रक्तावरोध संबंधित रोग नहीं होंगे। मलादि-त्याग के समय बातें करना, गायन, तेज श्वास-प्रश्वास लेना अथवा भार आदि उठाने का कार्य सर्वथा वर्जित है।

मलत्याग के समय विश्व-मंगल का चिन्तन

अपने मन को यथासंभव मलद्वार पर ही केन्द्रित रखकर निम्न प्रकार से चिन्तन करते हुए मल-त्याग करना चाहिए। जैसे- "विश्व-कल्याण एवं आत्म-मोक्ष के लिए देह और मन में शक्ति-संचार हेतु जो हितकारी और पौष्टिक भोजन मैंने ग्रहण किया था, उसका सारभूत अंश मेरे शरीर में परिरक्षित हुआ है। जो कुछ देह के लिए निरर्थक, निष्प्रयोजन और अहितकारी था, वह सब मल-मूत्र के रूप में परित्यक्त हो रहा है। पुरुष होने के कारण अथवा मेरी व्यक्तिगत त्रुटि से, आहार के दोष से अथवा जन-संसर्ग के कारण जो सब विष मेरे भीतर संक्रमित हुआ था, वह सब भी इस परित्यक्त मल

के साथ निर्गत होकर भावी अनिष्ट की अनेक सम्भावनाओं से मुझे मुक्त कर रहे हैं। मैं जो परित्याग कर रहा हूँ, वह मेरे लिए एकदम से त्याज्य होने पर भी इस मल-मूत्रादि पर जिनका जीवन निर्भर है, उन सभी कीटाणुओं आदि के जीवन-धारण के उद्देश्य से इसका श्रद्धापूर्वक उत्सर्ग करता हूँ।" साथ ही संक्षेप में इस तरह बोलना चाहिए–

"ॐ त्रैलोक्यं तर्पयामि स्वाहा।"

तुम इस पर हँस सकते हो, किन्तु यह हँसने का विषय नहीं है। यह मलोत्सर्ग तुम्हें लाभान्वित करेगा, सशक्त करेगा। शक्ति तपस्या से प्राप्त होती है, भगवान द्वारा सृजित अन्त्यज प्राणियों की कल्याण-कामना से मलत्याग करके भी तुमने यथार्थ तपस्या ही की है। पुष्प और बिल्व-पत्र के बिना तपस्या नहीं होती, ऐसी बात नहीं। भगवान द्वारा सृजित जगत् के प्रत्येक परमाणु को भगवान के कार्य में समर्पित करके तपस्या को सम्पन्न किया जाता है– फिर वह चाहे मल का ढेर ही हो अथवा चन्दन का पहाड़ ही हो। इस भारत में ही अभी भी एक धर्म-सम्प्रदाय ऐसा है जिसमें लोग अविस्मरणीय काल से अपने स्वजनों के मृत शरीर को अग्नि-दाह अथवा समाधिस्थ न करके चीलों-गिद्धों के आहार हेतु निर्जन पर्वतों के ऊपर की भूमि पर रख आते हैं। यह शरीर जीवित अवस्था में धर्माचरण और जगत्कल्याण में सहायक हुआ, जीवन के अन्त में भी यह दूसरों के आहार में उपयोगी होकर आत्मा की सद्गति में सहायक हो– यही उन लोगों की दृढ़ धारणा और विश्वास है। जो शरीर माता के असीम स्नेह और दुलार से गठित हुआ था, पत्नी के अपरिमित प्रेम से पुष्ट हुआ था, जिस शरीर के भीतर किसी के स्नेहमय पिता, किसी की प्रेममयी

माता, किसी की हास्यमयी सहधर्मिणी तथा किसी के प्राणमय जीवन-देवता निवास करते थे, उसी शरीर को चीलों-गिद्धों की आहार-सामग्री बनाकर किसके प्राणों को सहन होगा? किन्तु जगत्-कल्याण में उसे भी करना होगा। भूख से पीड़ित चीलों-गिद्धों की पेट की आग यदि एक दिन के लिए भी शान्त रखी जा सके, तो उसके लिए भी इस सुकुमार, सुन्दर शरीर को उनके लिए अर्पण करना होगा। वे सब आंतों और अस्थि-मांस को नोंच-नोंचकर खाएंगे, ऐसा भयावह दृश्य देखकर भी मैं प्रतिवाद नहीं कर सकूंगा क्योंकि इससे मेरे प्रियजन अपना सर्वस्व समर्पित करके आज परम यज्ञेश्वर को प्रसन्न करने हेतु इस महायज्ञ में अपनी आहुति देकर धन्य और कृतार्थ हो रहे हैं– यही यथार्थ यज्ञ है। छोटा हो, बड़ा हो, प्रिय हो, उपेक्षणीय हो, प्रशंसनीय हो, घृणास्पद हो– जो कुछ मेरा है, सभी कुछ जगत्कल्याण-यज्ञ में समर्पित करना होगा। इसमें कोई कुण्ठा नहीं, लज्जा नहीं, भय नहीं, द्विविधा नहीं, इसमें है केवल विश्वास, केवल भरोसा, केवल उत्सर्ग की प्रेरणा और निष्कपट आन्तरिक भाव। अतः परित्यक्त मलादि को भी कीटाणुओं के प्राण-धारण हेतु उत्सर्ग कर रहे हो– इस तरह का चिन्तन करने में संकुचित या लज्जित मत होना।

मलत्याग का स्थान

देश में जनसंख्या-वृद्धि के कारण जगह की कमी होने से एक स्थान पर अनेक व्यक्तियों के मल-मूत्रादि-त्याग का नियम प्रचलित हुआ है। यह कई प्रकार से आपत्तिजनक है। किन्तु स्वाधीन रूप से मलत्याग की सुविधा नहीं होने पर आम जनता द्वारा प्रयुक्त शौचालयों में ही जाना पड़ सकता है। किन्तु यह जगह जिस प्रकार

नियमित रूप से साफ-सुथरी और स्वच्छ रहे तथा कफ, खाँसी, थूक आदि फेंककर गैर जिम्मेदार लोग उस स्थान को चारों ओर से निरर्थक बनाकर न रखें, उस तरफ तीक्ष्ण दृष्टि रखनी होगी। जो लोग सर्वसाधारण द्वारा प्रयुक्त शौचालयों में नहीं जा सकते, उनके लिए कुछ और जगहें भी निषिद्ध हैं। रास्ते में या चरागाह-भूमि पर मलत्याग मत करना क्योंकि रास्ते में मलत्याग से पथिकों को असुविधाग्रस्त करना होता है और गायों आदि के घास चरने में असुविधा होने पर तथा संयोगवश अथवा अभ्यासवश किसी भी गाय द्वारा मल-भक्षण करने पर उसका दूध भी विषाक्त हो जाएगा। चिताभूमि, कब्रिस्तान, देवस्थान, परित्यक्त आश्रम आदि में भी मलत्याग मत करना क्योंकि उससे परलोकगत आत्मा, देवता और साधुओं-महापुरुषों के प्रति असम्मान प्रदर्शित होगा। जल में या जल के अतीव निकटवर्ती जगह पर मलत्याग मत करना क्योंकि उससे जल दूषित होकर जनसाधारण के स्वास्थ्य को विनष्ट करने में सहायक होगा अथवा जल लेने या स्नानादि के समय लोगों को असुविधा होगी। खेती की जमीन पर, चींटियों के वासस्थान (वल्मीक ढेर) पर तथा किसी जीव विशिष्ट के रहने वाले गड्ढे में भी मलमूत्रादि-त्याग के समय अपनी सुख-सुविधा देखने से काम नहीं चलेगा। जिससे अन्य किसी को भी रंचमात्र असुविधा न हो, उस ओर तुम्हें कड़ी दृष्टि रखनी होगी क्योंकि तुम विश्व-कल्याण-कर्मी हो।

खड़े होकर मूत्रादि का त्याग

रास्ते में चलते-चलते मल-मूत्रादि का त्याग अभी भी समाप्त नहीं हुआ है किन्तु सम्भवतः पाश्चात्य लोगों की नकल करके

खड़े होकर मूत्र-त्याग करना देश के अनेक पढ़े-लिखे लोगों ने भी सीख लिया है। पाश्चात्य लोग शरीर-बल से और विज्ञान की शक्ति से विश्वविजयी हुए हैं, अत: वे लोग जो कुछ करते हैं, सब कुछ अच्छा है, जिस तरह करते हैं, वैसा ही उत्कृष्ट है, इस तरह की गलत धारणा वर्तमान समय में कमोबेश सभी के मन में बद्धमूल हो चुकी है। इसी कारण अपने शास्त्रों आदि की प्रशंसा किसी जर्मन या अंग्रेज विद्वान के मुख से निकलने पर हम हर्षोल्लास से विह्वल हो जाते हैं और इतने दिनों तक जिन शाास्त्रों को कुछ अनुदार ईसाई धर्मप्रचारकों की बातें पढ़कर हम जो उन्हें पैरों तले रौदने योग्य मानते हैं, वही बात फिर सिर पर ढोते हुए नाचने लगता हूँ। परमुखापेक्षिता और आत्मविश्वासहीनता ने हम सभी को ऐसा बेवकूफ, मूर्ख और सारहीन बना दिया है कि देशी ढंग से कपड़े-लत्ते पहनना और भोजनादि ग्रहण करना जो कि हमारे स्वास्थ्य के लिए सर्वश्रेष्ठ है, इस पर हम ध्यान नहीं देते। यहाँ तक कि भोजनादि के नियम तथा पाक-कला आदि के क्षेत्र में भी, सभ्यता का अभिमान करने वाले पाश्चात्यों को अनेक विषयों में हम लोगों के पास से बहुत कुछ सीखना है, ये बातें कुछ खास यूरोपीय साहबों के मुख से बिना सुने हम लोग विदेशी ब्रांडों की शराब आदि का मोह नहीं छोड़ना चाहते हैं, हम लोग ऐसे ही मूर्ख हैं कि बिना समझे उनकी नकल करते हुए हर कदम पर नेस्तनाबूंद होने में लज्जा का अनुभव नहीं करते हैं।

मैं निश्चय ही ऐसी बात नहीं कर रहा हूँ कि जो कुछ विदेशी हैं, उसे त्याग देना होगा। पाश्चात्य लोगों ने अपने यहाँ जो समस्त कल्याणकर आचार-व्यवहार और नैतिक नियम बना रखे हैं, उनका यथासम्भव लाभकारी भाग हमें ग्रहण करना होगा किन्तु साथ ही

मोहमुक्त चित्त से, पक्षपातरहित होकर, एक बार अच्छी तरह से विचार करके देख लेना होगा कि जब वर्तमान यूरोप का सर्वाधिक शक्तिशाली देश इंग्लैण्ड बर्बरता के युग का अतिक्रमण नहीं कर सका था और यहाँ तक कि पाश्चात्य लोगों के धर्मगुरु ईसामसीह तक ने भी जब जन्म नहीं लिया था, उससे भी लगभग पाँच सौ वर्षों पूर्व हमारी यह भारतभूमि एक-एक करके तीन बड़े धर्म-प्लावन से प्रक्षालित हो चुकी थी। भारत माता की उसी सद्य:स्नात सुन्दर मूर्ति में तीन धर्मों (सनातन, बौद्ध, जैन) की शोभा की विशिष्टता, तत्कालीन भारत की सन्तानों की सत्यता, सरलता, जीव-प्रेम, परधर्म-द्वेषहीनता, सहिष्णुता, सत्यवादिता, न्यायपरायणता, धर्मनिष्ठा और सर्वोपरि राष्ट्रीय स्वाधीनता मूर्तिमान हो उठी थी। शक्ति के दर्प-मद में चूर पाश्चात्य देशों में लोग आज तक जिस अहिंसा की खोज नहीं कर पाए, उसी को उस समय हृदय में गूँथ दिया था। ऐसा हुआ क्यों? इस अन्तर का कारण क्या है? चलो, वेदादि शास्त्रों के अभ्युदय-युग के काल-निर्णय को लेकर पाश्चात्य विद्वानों के साथ तर्क न किया जाए, वैदिक ऋषियों की महिमा की समसामयिकता को बहस या विवाद से बाहर ही रखा जाय, तो भी प्रश्न यह है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को जैसा बनाया है अर्थात् शिव निर्मित करने के चक्कर में वानर बना देने की शृंखला वाले उस सीमित इतिहास को ही सत्य मान लेने पर भी प्रत्येक चिन्तनशील व्यक्ति के मन में यह प्रश्न अवश्यमेव उठेगा कि भारत के साथ पाश्चात्य का यह अन्तर क्यों है?

पाश्चात्य के साथ हमारा अन्तर या भेद कहाँ और क्यों है, उसका सम्यक् रूप से निर्णय न करके जिस प्रकार हम पाश्चात्य का

कुछ ग्रहण भी नहीं कर सकते, उसी प्रकार अपने द्वारा चिरकाल से आचरित किसी भी सदाचार को हठपूर्वक छोड़ भी नहीं सकते। हमारी राष्ट्रीयता का जो मेरुदण्ड या मूलाधार है, उस मेरुदण्ड को टेढ़ा न करके उसके चारों ओर मांसपेशियों का संयोजन आपत्तिजनक नहीं है, किन्तु आयतन बढ़ाते रहने पर पाश्चात्य के मांसपिण्ड के भार से यदि मेरा भारतीय मेरुदण्ड टूट जाए, तो उसका उपाय क्या? इसीलिए ग्रहण करने और त्याग करने में विचार करना आवश्यक है। किसी एक बड़े आदमी ने ऐसा किया है, इसी कारण भेड़ियाधसान की तरह उसका अनुकरण और अनुसरण करने से काम नहीं चलेगा। प्रतिभावान लोगों की यथेष्ट दुहाई दी जाती है किन्तु पादरी के.एम. बनर्जी, डब्ल्यू. सी. बनर्जी, मनमोहन घोष, टी. पालित, डाक्टर गुडिभ चक्रवर्ती तथा माइकेल मधुसूदन दत्त आदि के समान विद्वान लोग भी विलायती ढंग से आहार करते थे या वस्त्र पहनते थे, इसी कारण राष्ट्रीयता की अदालत में इन लोगों की इस नजीर को प्रामाणिक मानकर स्वीकार नहीं किया जा सकता। इन लोगों के द्वारा अनेक प्रकार से राष्ट्रीय गौरव और संपदा में वृद्धि करने के बावजूद इन लोगों का सभी कुछ निर्विचार भाव से अनुकरणीय नहीं है।

तुम्हें स्मरण रखना होगा कि भारतीय सदाचार का परित्याग करके पाश्चात्य सदाचार को ग्रहण करना हमेशा कल्याणकारी नहीं हो सकता। पाश्चात्यों के अनेक प्रकार के सदाचार हमारे लिए अनाचार या व्यभिचार हैं। अतएव बैठकर मूत्रत्याग करने की जो चिरन्तन प्रथा हमारे यहाँ चलती आ रही है, उसे छोड़ देना अनावश्यक है। किन्तु नगरीय क्षेत्र में सर्वसाधारणं के प्रयोगार्थ जो मूत्रालय हैं, वहाँ खड़े होकर पेशाब करना ही उचित है, अन्यथा किसी भी तरह से अन्य

लोगों द्वारा परित्यक्त मूत्र के संस्पर्श से सुजाक, उपदंश आदि कुत्सित, घृणास्पद रोगों के निरपराध और निर्मल चरित्र लोगों में भी संक्रमित होने की संभावना है। यहाँ मैं खड़े होकर पेशाब करने का जो समर्थन कर रहा हूँ, वह भारतीय जीवन-यापन की शैली और प्रथा को भंग करने के आग्रह से भी नहीं है अथवा पाश्चात्य-सुलभ अनुकरण के मोह से भी नहीं है; यह केवल आत्मरक्षार्थ है, केवल प्राणों पर संकट आने से बचाव की विवशता में है।

'पाश्चात्य-सुलभ' अनुकरण कहने से शायद तुम चिढ़ जाओगे। किन्तु सच्चाई यही है कि हम लोग पाश्चात्य के सहज अनुकरणीय आचरणों की ही नकल कर रहे हैं। जो लोग दीर्घकाल से पराधीन हैं, उनके लिए इस तरह का सुलभ अनुकरण का मोह कितना स्वाभाविक है! किन्तु स्वाभाविक कहकर किनारा कर जाने से आज हमारा काम कहाँ चलता है? पाश्चात्य लोग अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान को अक्षुण्ण और अटूट रखने के लिए जैसे कीट-पतंगों के झुंड की तरह युद्ध की आग में आत्माहुति दे सकते हैं, हमारे समान नपुंसक, पंगु, पशुवत् छिपकर, प्राण न बचाकर पाश्चात्य लोग जिस तरह घरेलू औरतों की इज्जत बचाने के लिए मुत्यु को अस्वीकार करते हैं, देश की गौरव-वृद्धि को ध्यान में रखकर पाश्चात्य लोग जैसे पर्वत शिखरों की ठंढ, मरु की गर्मी, जंगलों की हिंसा तथा आल्प्स और हिमालय पर्वत की बाधाओं-विपदाओं के बीच भी अनायास ही प्राणों की आहुति दे देते हैं, उसी तरह जिस दिन हम लोग पाश्चात्यों की तरह ऐसा कर पाएँगे, उसी दिन एक दुर्लभ अनुकरण सम्पन्न होगा और वह अनुकरण हमारे राष्ट्रीय मेरुदण्ड को मजबूत करेगा। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य लोगों के यही सब मानवोचित गुण और वीरोचित अध्यवसाय हम

लोगों में थे किन्तु हमारा आत्मविस्मृत, बदनसीब राष्ट्र उस गौरव की वीरता-गाथा को भूल गया है। इससे भी बड़ा दुर्भाग्य यह है कि उस पुरातन कथा को स्मृति में लाने के लिए हमारे भीतर कोई आग्रह नहीं है।

अतीत की गरिमा स्वप्नवत् भूल गए हाय ।
इसीलिए अकेले पथिक-मुख पर सब थूकते जाएं ।।
अतीत की कथा, धूल-धूसरित करे आर्तनाद ।
हम सभी क्लब में बैठकर, करें निन्दा-विवाद ।।
तुच्छ निन्दा, गर्हित रुचि, घृणित वाद-मत ।
अनजाने ही चिर-नरक का पथ करे प्रशस्त ।।

*

"विश्व की सेवा के लिए,
जीवन तुम्हारा ।
विश्व के उद्धार में तव,
आत्मा का उद्धार ।।"
—श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द

अध्याय छह

मूत्र-त्याग के नियम

मूत्र-त्याग के समय मुख को जल से भरकर थोड़ी-थोड़ी देर पर एक बार पेशाब को रोककर, दो-तीन सेकेन्ड तक रोक-रोक कर पेशाब करने से एक तरफ जैसे इससे उदरी (पेट में पानी जाना) और अंडकोष-वृद्धि (हाइड्रोसील) का रोग नहीं होने की बात कही जाती है, वैसे ही दूसरी तरफ, मूत्र-नली की पेशियाँ क्रमश: मजबूत बनकर इन्द्रियगत दुर्बलता को रोकती हैं। शरीर के प्रत्येक अंग का ही एक विशिष्ट प्रकार का व्यायाम है। उनके अभ्यास से विभिन्न अंग अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार परिपुष्टि प्राप्त करते हैं। इस तरह पेशाब करने से जननेन्द्रिय का व्यायाम सुरक्षित ढंग से होता है। जननेन्द्रिय के अन्य अनेक प्रकार के व्यायाम हैं जिसमें इतने खतरे हैं कि जिस-तिस के मुख से एक बात सुनकर अथवा किसी पुस्तक से पढ़कर अभ्यास करना अनुचित है। पुस्तकें पढ़कर योगाभ्यास करके बहुत से लोग कठिन रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं तथा लम्बे समय तक बहुत कष्ट भोग कर अकाल में काल-कवलित होकर जीवन-लीला समाप्त कर बैठते हैं। इसी कारण जननेन्द्रिय के अन्य किसी भी व्यायाम के बारे में यहाँ उल्लेख नहीं किया है।

मलद्वार पर मिट्टी का लेपन

मलत्याग के बाद बिलकुल स्वच्छ और शुद्ध मिट्टी का लेप करके बारम्बार जल से धोना चाहिए। वर्तमान समय में मलद्वार में

मिट्टी-लेपन की प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी है, यही कहा जा सकता है। इससे हमारा कोई कल्याण हुआ है, यह बात तो मैं नहीं कह सकता किन्तु आज घर-घर में अर्श (बवासीर) के रोगी दिखाई पड़ते हैं। रोज मिट्टी लेपन करने वाले को कभी भी अर्श रोग नहीं हो सकता और यदि किसी को अर्श रोग रहता है, तो दीर्घकाल तक धैर्यपूर्वक मिट्टी-लेपन के परिणामस्वरूप वह भी समाप्त हो जाता है। किन्तु जिस मिट्टी को केंचुए, चूहे, दीमक आदि के द्वारा उत्खनित किया गया हो, जिस मिट्टी को कुत्ते, बिल्ली, सियार आदि के नाखूनों से खरोंचा गया हो या मल-मूत्र त्याग किया गया हो, जिस मिट्टी में किसी भी प्राणी या मृतदेह या देहांश पड़ा हो या जिस मिट्टी में मृत या जीवित कीटाणु आदि हों, जो मिट्टी गीली और कीचड़युक्त हो अथवा जो दूसरों के शौच का अवशिष्ट हो, ऐसी मिट्टी का कभी भी मलद्वार पर लेपन नहीं करना चाहिए। इसकी अपेक्षा केवल जल द्वारा शौच-विधान बेहतर है। उचित समय पर उपयुक्त मिट्टी मिलने में कोई बाधा होने पर कंकड़रहित मिट्टी ले आकर उसे लगातार कई सप्ताहों तक तेज धूप में अच्छी तरह सुखा लेने से उसके सभी दोष समाप्त हो जाएंगे।

पेशाब करने के बाद जल-शौच

पेशाब करने के बाद भी जननेन्द्रिय को स्वच्छ करना चाहिए किन्तु तब मिट्टी की आवश्यकता नहीं है। हर बार पेशाब के बाद ही जल द्वारा मूत्र-द्वार को अच्छी तरह से धो लेना चाहिए। स्वप्नदोषादि से उत्पन्न वीर्यपात के बाद जननेन्द्रिय की सफाई में शिथिलता बरतना किसी भी तरह हितकर नहीं है। जो लोग पेशाब

करने के बाद जल से सफाई नहीं करते, उनके मूत्र-द्वार पर गंदगी एकत्र होने से एक प्रकार के कीटाणु पैदा होते हैं। ये कीटाणु सामान्य आँखों से नहीं दिखाई पड़ने के कारण क्षरण या घाव उत्पन्न करते हैं। इसके फलस्वरूप जननेन्द्रिय में बार-बार उत्तेजना उत्पन्न होने से हमेशा शरीरस्थ वीर्य निर्गत होता रहता है। इसीलिए ब्रह्मचर्य-व्रत के अभ्यासी के लिए पेशाब करने पर जल से धोने को एक अत्यावश्यक नियम के रूप में जानना चाहिए।

कई लोग ऐसा सोचते हैं कि केवल ब्राह्मण लोग ही पेशाब के बाद जल से मूत्र-मार्ग को धोने का अधिकार रखते हैं, किन्तु यह अज्ञानी व्यक्ति का एक अन्ध कुसंस्कार मात्र है। यदि कोई इस तरह के अनुचित तर्क के साथ विपरीत बात समझाने आए, तो उसकी बातें सुनते ही खारिज कर देनी चाहिए। पेशाब के बाद जल से मूत्र-द्वार को धोना कितनी हितकर विधि है, इसे महात्मा हजरत मोहम्मद भलीभाँति जानते थे और इसी कारण उन्होंने इसे मुसलमानों के लिए एक अवश्य-करणीय कर्तव्य के रूप में निर्धारित किया है। इससे जननेन्द्रिय की अस्वाभाविक उत्तेजना की प्रवृत्ति नष्ट होती है और ऐसा करने से मस्तिष्क शीतल और स्निग्ध रहता है

दांतों की सफाई

शौचादि समाप्त करके करतल और पदतल को अच्छी तरह से धोकर मुख और दांतों को साफ करना चाहिए। जिन लोगों के दांतों के मसूढ़े कोमल हों, उन्हें दातून का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उनके लिए बिलकुल सूखी लसदार मिट्टी, कपूर और फिटकिरी मिश्रित खड़िया मिट्टी (चॉक Chalk) का चूर्ण अथवा अन्य किसी

भी प्रकार का दंतशोधक या दंतरक्षक मंजन का प्रयोग उचित है। जिन लोगों का दांतों का मांस उपयुक्त रूप से मजबूत है, उन्हें कसैला, तिक्त आदि जो रस जिसके स्वास्थ्य के अनुकूल हों और जो रस जिस ऋतु में अधिकतर उपयोगी हों, उसी रस विशेष वाले तथा न अधिक मोटे और न अधिक पतले, सीधे और गांठ रहित दातून का प्रयोग करना चाहिए। साधारणतया, नीम की दातून दांतों के लिए सर्वश्रेष्ठ है। मुख की दुर्गन्ध, स्वादहीनता, उल्टी से बचाव, प्यास, अरुचि और मुख के सभी प्रकार के घावों को दूर करने में इसकी शक्ति बेमिसाल है। दांतों की सफाई के समय दंत-पंक्ति के बाहरी भाग, भीतर की ओर और जिह्वा-मूल की बड़े जतन से सफाई करनी चाहिए। जीभ साफ करने के लिए जीभ की छिलनी (जीभी) का उपयोग करना सुविधाजनक है। दांतों की सफाई सूर्योदय के पूर्व ही कर लेनी चाहिए।

हमारे देश में बच्चे आजकल दांतों को मांजने के लिए अधिक समय नहीं पाते। देर से सोकर उठते ही जल्दी से किसी तरह चुल्लू-भर पानी से थोड़ा कुल्ला करके, फिर गमछे के एक कोने से दोनों आँखों को थोड़ा पोंछकर सवेरे की चाय पीने बैठ जाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, यह सब तो जहन्नुम (नरक) में जाने का प्रकट लक्षण है। दांतों के मूल में गंदगी जमने से जो विष उत्पन्न होता है, वह दांत-दर्द आदि उत्पन्न करके महीने में दो बार तो परेशान करता ही है, उसके बाद और संकट यह है कि खाद्य-वस्तुओं के साथ दांतों की गंदगी मिश्रित होकर पाचन-क्रिया पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। नकली दांतों से देश समृद्ध होता जा रहा है, उसका दुःख नहीं है, किन्तु ये जो बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी उदर-रोगी हो गए,

उसका क्या उपाय किया जाय?

इसीलिए, तुम लोगों को दांतों की सफाई जैसे एक सामान्य नियम का भी निष्ठापूर्वक पालन करना होगा। छोटे-बड़े सभी हितकर नियमों को यदि हम पूरी श्रद्धा के साथ ग्रहण नहीं कर सकते हैं, तो फिर इस ध्वंसोन्मुख राष्ट्र का अभ्युदय नहीं हो पाएगा और हमारा पतन बिलकुल अनिवार्य हो जाएगा। शरीर और स्वास्थ्य-संरक्षण के बारे में धर्मान्ध से बढ़कर कट्टर होकर चलना होगा। फिर, दांतों की सफाई को इतना तुच्छ ही क्यों मानें? यूरोप के प्रथम विश्वयुद्ध में सभ्यता रूपिणी राक्षसी की क्षुधाग्नि में ईंधन डालने के लिए जब विश्व के लगभग सभी स्वाधीन और पराधीन देशों के सैनिक विभिन्न रण-प्रांगणों में एकत्रित हुए थे, तब यह देखा गया कि भारतीय सिख सैनिक और जर्मन सैनिक अल्प औषधि और अल्प सेवा-शुश्रूषा से ही कठिन से कठिन अस्त्र-शस्त्रों के आघात से शीघ्र ही चंगे हो उठे थे, किन्तु ब्रिटिश और फ्रांसीसी सैनिकों की अति सामान्य चोट में भी थोड़े ही दिनों में सड़न उत्पन्न हो गई थी। साथ ही यह भी देखा गया था कि अमेरिकी चिकित्सकों को जिन ब्रिटिश और फ्रांसीसी सैनिकों की चिकित्सा हेतु नियुक्त किया था, वे जितनी जल्दी नीरोग हुए थे, ब्रिटिश और फ्रांसीसी चिकित्सकों के चिकित्साधीन रोगी सैनिक उतनी जल्दी स्वस्थ नहीं हुए थे। बाद में अनुसंधान से पता चला कि जो सिख और जर्मन सैनिक युद्ध में घायल हुए थे, वे नित्य दांतों की सफाई के अभ्यस्त थे और अमेरिकी चिकित्सक उपचार के समय अपने अधीनस्थ ब्रिटिश और फ्रांसीसी रोगियों के दांतों को अधिकांशतः अपने-अपने हाथों से ही साफ कर दिया करते थे। इससे रोगियों द्वारा भोज्यपदार्थ उत्तम ढंग से चबाया जाता और खाया गया भोजन

पाचन-तंत्र में पहुँचकर अति शीघ्र ही पच जाता था। यूरोप का दृष्टान्त न होने से यह बात नितान्त उपेक्षणीय हो जाती, इसीलिए इसका एक उदाहरण यहाँ दिया गया है।

भोज्यपदार्थ के पाचन के साथ राष्ट्र के भविष्य का संबंध

तुम लोग यह स्मरण रखना कि किसी राष्ट्र का समग्र भविष्य उसके भोजन पचाने की शक्ति पर निर्भर होता है। दुर्बल देह, कुंठित स्नायु, अपूर्ण मस्तिष्क, अक्षम मनुष्यों द्वारा देश का जो भविष्य निर्मित होगा, वह हमारे लिए गौरव को नहीं लाएगा, अपितु मृत्यु-शोचनीय मृत्यु को ही आमंत्रित करेगा। निकट भविष्य के उस हृदयविदारक भयावह दृश्य की मन ही मन कल्पना करके अपने कर्तव्य के बारे में विचार करो। विश्व का प्रत्येक राष्ट्र अपनी-अपनी मांसपेशियों की शक्ति बढ़ा रहा है, कोई भी आलसी बनकर नहीं बैठा है। किसी की अक्षमता और असावधानी का अवसर पाकर अन्य लोग उसके मुख का ग्रास छीन लें, ऐसा अवसर देने को कोई भी तैयार नहीं है। फिर, क्या केवल तुम लोग ही धान से भरे हुए भंडारगृह के रहते हुए भी, बिना खाये ही मरोगे? प्रतियोगिता के क्षेत्र में पराजित होकर क्या तुम लोग चिरकाल तक पददलित ही रहोगे? अरे भाई! आँखें रहने पर भी कितने दिनों तक अंधे रहोगे? कान रहने पर भी कब तक बहरे रहोगे? असावधानीवश तुमने राजाओं के अमूल्य धनरूप मोती को गँवा दिया। उदासीनता से तुमने अपनी अचल प्रतिष्ठा को विचलित किया है, क्षुद्र स्वार्थपरता में डूबकर श्रेष्ट स्वार्थ को अथाह जल में विसर्जित कर बैठे हो, और कितना पतनोन्मुख होओगे? हे भाई! आज तो तुम उठो। आत्मकल्याण, देशकल्याण, विश्वकल्याण में एक बार उन्नति प्राप्त

करो। हे सिंह-शावक! अब सियार के बच्चे की उपासना मत करो, बुद्धिमान की बुद्धि को उधार मांगकर मत लेना। चतुर व्यक्ति की चतुराई का आश्रय मत लेना। अजेय पराक्रम, अटल साहस, अप्रतिम धैर्य के साथ आगे बढ़ो। प्रतियोगिता के रणांगण में आज तुम्हें सर्वविजयी होना होगा, सारे प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित करना होगा, अन्यथा तुम्हारा अब उद्धार नहीं है। तुम्हें आज जीवित रहना होगा और उसी जीवंतता की तरह जीवित रहना होगा, जिस जीवंतता का गौरव-गान तुम सशस्त्र विश्व के वक्षस्थल पर निरस्त्र खड़े होकर भी गर्वसहित कर सको, जिस जीवन्तता के साथ जीवित रहने पर सभी राष्ट्रों के सभी व्यक्ति तुम्हारी सेवा से संतुष्ट, परिपुष्ट और संजीवित होंगे, जिस जीवंतता के साथ जीवित रहकर सात महारथियों से घिरे हुए अभिमन्यु की तरह मरकर तुम मृत्यु का भी गौरव-गान करने के योग्य बनोगे, उसी जीवंतता के साथ आज तुम्हें जीवित रहना होगा। इसीलिए, आज तुम्हारे बाहुओं में दुर्जय शक्ति, हृदय में असीम बल, देह में अपूर्व कष्ट-सहनशक्ति और मन में अदम्य और उद्दाम उत्साह तथा प्रेरणा होनी चाहिए। आज देश को प्रेम करो, राष्ट्र से प्रीति करो, पतितों के लिए सहानुभूति से द्रवित हो जाओ, पीड़ितों के लिए हृदय के अन्तरतम से उनके कष्ट का अनुभव करो, तभी तुम्हारे भीतर शक्ति की हजारों जलधाराएं निःसृत हो उठेंगी तथा सामर्थ्य का वासुकि नाग सहस्रों फणों को फैलाकर नाच उठेगा। प्रेम सर्वजयी होता है, प्रेम सर्वग्रासी होता है। आज तुम प्रेमिक बनो, सर्वत्र तुम्हारी विजय होगी, तुम्हारा प्रेम विश्व भर में छा जाएगा और तुम्हारे पृथक् अस्तित्व का समूल विनाश करके तुम्हारे आत्म-मोक्ष और जगत्कल्याण के मार्ग को निष्कटंक बना देगा।

*

अध्याय सात

नेत्र-प्रक्षालन

हाथ-पैर-मुख आदि के प्रक्षालन के समय मुख में जल भरकर आँखों पर सत्ताइस बार जल का छींटा मारने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है और मन:संयम की सामर्थ्य में वृद्धि होती है। जल से प्रक्षालन के समय नि:श्वास-प्रश्वास बन्द या रोके रखना आवश्यक है किन्तु इस ओर ध्यान रखना चाहिए कि जल के छींटे आँखों की पुतलियों पर न पड़कर, दोनों भौंहों के बीच पड़ें। पुतलियों पर छींटे लगने से आँखें बेकार में ही आहत होंगी और विविध नेत्र-पीड़ा उत्पन्न होगी। इस तरह जल के छींटे देते समय भौंहों के मध्य ॐकार, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रादि, अपनी इष्ट-ज्योति आदि ज्योतिर्मय पदार्थों या विषयों का चिन्तन करना विशेष हितकारी है। भले ही कुछ ही समय हो, किन्तु प्रतिदिन ही सामान्य नियम बनाकर एक निर्दिष्ट कल्याणकारी प्रक्रिया का पालन करने से, थोड़ा-थोड़ा करके अनुदिन जो साधना होती है, वह विश्वास की शिथिलता और निष्ठा-निर्भरता की अल्पता से बीच-बीच में अवरुद्ध न हो, तो वही एक दिन हिमालय सदृश गगनचुम्बी ढेर होकर दृष्टिगोचर होगी। किन्तु जल के छींटे केवल किसी विशेष समय ही देने चाहिए, ऐसी बात नहीं है। जब भी, किसी भी कारणवश हस्त-मुखादि का प्रक्षालन किया जाय, उसी समय कम से कम सात बार जल के छींटे देने का प्रयास करना चाहिए। हर बार छींटे देते समय रवि-सोमादि ग्रहों का नामोच्चारण और उनके ज्योतिर्मय रूप का चिन्तन करने से भी कल्याण होता है। जिन लोगों ने इष्टमंत्र

में अपने जीवन का श्रेष्ठ पथ प्राप्त किया है, उनके लिए रवि-सोमादि ग्रहों या अश्विनी-भरणी आदि नक्षत्रों के नामोच्चारण की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इष्टमंत्र ही श्रेष्ठ मंत्र है, इष्ट-ज्योति ही श्रेष्ठ ज्योति है, इसका उच्चारण ही श्रेष्ठ उच्चारण है, इसका ध्यान ही श्रेष्ठ ध्यान है। जिसके पास कोहिनूर हीरा है, उसके लिए दूसरे के पास की बहुमूल्य स्वर्ण-मुहर होने पर भी, वह तुच्छ है, अतीव तुच्छ है। जिसने कल्पवृक्ष को पा लिया है, वह मलयाचल के चन्दन-वन को भी अस्वीकार कर देता है।

छोटा हो या बड़ा हो, प्रत्येक दैनन्दिन कार्य के बीच उन परमानन्द-धाम, परम पुरुष को स्मरण रखना होगा। यही असली बात है। आहार-विहार में, स्वप्न-जागरण में, अध्ययन-विश्राम में, भ्रमण और ठहराव में, हर समय अपने जीवन के लक्ष्य को, अपने जीवन के श्रेय को, अपने जीवन के सारसर्वस्व ईश्वर को स्मरण रखना होगा; यही यथार्थ ब्रह्मचर्य है। जिस महान कार्य को साधित करने हेतु दुर्लभ मनुष्य-जन्म प्राप्त करके आया हूँ, प्रकृति की जिस पराधीनता को स्वेच्छया स्वीकार करके मैं उस महान कार्य की साधना में सक्षम होते हुए भी अक्षम हो गया हूँ, उसी पराधीनता को नष्ट करके कैसे पुनः जन्म लेना सार्थक करूँ, इसी बात को ही हमेशा हृदय में जागरूक रखकर प्रत्येक कार्य में अपने मन को संयत और संयुक्त करना होगा। सदा-सर्वदा अपने को रोगमुक्त रखकर निरन्तर आत्म-चिन्तन या आत्म-गठन या आत्म-विकास ही साधना है। यही साधना ब्रह्मचर्य है, इसीलिए ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते समय इसका बड़ी बारीकी से अनुपालन करना पड़ता है।

व्यायाम का अभ्यास

शौचादि समाप्त करके नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। एक निश्चित नियम बनाकर उसका अक्षरश: पालन नहीं करने से व्यायाम का अपेक्षित लाभ नहीं दिखाई पड़ता है। आज पाँच बजे, कल दस बजे, आज सुबह, कल शाम, किसी दिन दोपहर में, तो किसी दिन सम्भवत: अर्धरात्रि में व्यायाम शुरू कर दिया। इससे देह और मन के कल्याण की आशा कम, बल्कि नुकसान ही हो सकता है। आहार, निद्रा, व्यायाम और उपासना इन चारों में समय-पालन नहीं करने पर इनकी कल्याणकारी शक्ति का ह्रास हो जाता है। व्यायाम और उपासना के सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और भी एक जरूरी बात है। आज डम्बल, कल मुग्दर, परसों शायद देसी कसरत, आज एक व्यक्ति के उपदेश के अनुसार एक तरह की उपासना, कल फिर किसी दूसरे के उपदेश के अनुसार एक दूसरे प्रकार की उपासना, परसों फिर तीसरे प्रकार की उपासना आदि मैं अवश्य ही कर सकता हूँ, इस विषय में मेरी स्वाधीनता को कौन छीन सकता है? किन्तु इससे देह की भी पुष्टि नहीं होती और मन की निर्मलता भी साधित नहीं होती। रोज-रोज पद्धति में परिवर्तन करके, नगर-नगर में दीप-शिखा जलाकर भी अफसोस है कि तुम जिस अंधकार में थे, उसी अंधकार में रहोगे। तुम्हारी देह में शक्ति की शोभा प्रकटित नहीं होगी, ज्ञान की ज्योति तुम्हारे चित्त को आलोकित नहीं करेगी। इधर-उधर घूमकर, सभी दरवाजों पर सिर पटककर तुम केवल थकोगे ही, पिपासा की शांति-सुधा का पान नहीं कर पाओगे। इसीलिए इसमें एकनिष्ठता जरूरी है। यदि डम्बल ही उठाते हो, तो डम्बल उठाने में सम्पूर्ण उन्नति करके ही उसे छोड़ना। उसको छोड़कर

डम्बल, मुग्दर, माप-तौल का वजन उठाना, जापानी जुजूत्सु, मुक्केबाजी, कुश्ती या अन्य व्यायामों में कौन से व्यायाम तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है, इसको तुम अपनी रुचि, स्वभाव, सामर्थ्य और सुअवसर की विवेचना करके निर्धारित करो। किन्तु जिसको तुम एक बार ग्रहण करो, उसे आसानी से बीच में मत छोड़ना। व्यायाम की पद्धति का चयन शारीरिक गठन या कृशता-स्थूलता पर विशेष रूप से निर्भर होता है। व्यायाम की प्रणाली जीवन के उद्देश्य की भी पूरी तरह अपेक्षा रखती है। जो व्यक्ति व्यायाम से प्राप्त शक्ति द्वारा दीनों-दरिद्रों का दु:ख दूर करेगा, विपन्न लोगों को संकट से छुड़ाएगा, पीड़ितों-लांछितों के कष्टों का अन्त करेगा अथवा जो व्यक्ति दैहिक शक्ति की प्रदर्शनी लगाकर केवल पेट के लिए अन्न जुटाएगा अथवा जो व्यक्ति दैहिक शक्ति द्वारा परपीड़न, दूसरों का अपहरण, दूसरों की स्वाधीनता में हस्तक्षेप आदि पशु-सुलभ कार्य करेगा, इन तीन लोगों की एक व्यायाम-पद्धति नहीं हो सकती है। भगवच्चिन्तन-परायण व्यक्ति के लिए दो-एक आसन-प्राणायाम ही यथेष्ट हैं, कर्मयोगी के लिए वह भी यथेष्ट नहीं, यहाँ तक कि हर समय उसके लिए आसन-प्राणायाम आवश्यक भी नहीं है। एक गामा जैसे पहलवान के लिए जो व्यायाम आवश्यक है, विवेकानन्द, विजयकृष्ण या रामतीर्थ के लिए वह व्यायाम आवश्यक नहीं है। अतएव, अपने जीवन के लक्ष्य को विशेष रूप से समझकर व्यायाम-प्रणाली का चयन करना। तुम्हारे जीवन का लक्ष्य चाहे जो भी, यह बात तुम्हें मन में स्मरण रखनी होगी कि सबल, सुदृढ़ और स्वस्थ देह सभी के लिए आवश्यक है। बहुत से लोग यह कहते रहते हैं कि देश की वर्तमान गरीबी में दंड-बैठक या कुश्ती आदि द्वारा व्यायाम न करके, मिट्टी खोदकर शाक-

सब्जी उगाकर व्यायाम के कार्य करना उचित है। यह बात नितान्त अस्वीकार्य नहीं है। केवल गरीब या मध्यमवर्गीय लोग ही क्यों, धनी लोगों के बच्चे भी यदि रोज अपने खेतों, बागों की मिट्टी खोदकर कार्य करें, तो धनी-सुलभ व्यर्थ की आत्म-गरिमा का ह्रास होगा और ब्रह्मचारी के आभूषण रूप विनय और दीनता (हीनता नहीं) उनके भीतर आएगी। यह एक बहुत बड़ा लाभ है। ब्रह्मचारी की उन्नति की हिसाब-बही में इन दो गुणों के जमा हो सकने पर एक राज्य-प्राप्ति से भी अधिक बड़ी सम्पदा आ जाएगी। किन्तु व्यायाम की तुलना में सभी लाभदायक श्रम कुछ भी नहीं है, यहाँ तक कि खेल आदि भी उनके आनन्दोल्लास-संचार के पृथक् कर देने पर नियमित निर्दिष्ट व्यायाम के बहुत पीछे जाकर कुंठित हाव-भाव से खड़े हो पाते हैं।

तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति निहित है। उसे जाग्रत कर सकने पर सम्पूर्ण विश्व में कोई भी तुम्हारा प्रतिरोध नहीं पाएगा। उस महान शक्ति के तुम्हारे भीतर प्रसुप्त रहने के कारण तुम सोचते हो कि तुम दुर्बल हो, तुम अधम हो, तुम अक्षम हो। अपने को हेय, तुच्छ और क्षुद्र समझने के कारण ही तुम्हारे भीतर की शक्ति सिंह-गर्जना से नहीं जाग्रत हो पा रही है। जिस क्षण तुम पूरे मन-प्राण से यह जान जाओगे कि तुम दुर्बल नहीं, तुम अधम नहीं, तुम अक्षम नहीं, ठीक उसी क्षण तुम्हारी हृदयस्थ आद्याशक्ति की हुंकार-गर्जना से वज्रपात की भयानक ध्वनि भी लज्जा और शंका से नीरव हो जाएगी।

इस सुप्तशक्ति को जाग्रत करने के लिए विभिन्न युगों में मनुष्यों ने जिन प्रणालीबद्ध प्रयत्नों का अवलम्बन किया है, उसका ही नाम व्यायाम है। इस प्रयत्न से मन का सम्पर्क ही मुख्य बात है तथा परिश्रम और देह-संचालन गौण है। जहाँ मन की शक्ति दैहिक

श्रम के साथ-साथ कदम मिलाकर चलती है, वहाँ श्रम से उत्पन्न थकावट की अपेक्षा शक्ति अधिक होती है। जहाँ मनुष्य का मन वन-जंगल में भटकता है और शरीर गधे का बोझ वहन करता है, वहाँ परिश्रम ही सारवस्तु होती है। देह की मांसपेशियाँ भी उपयुक्त रूप से परिपुष्ट नहीं होतीं तथा देह की अस्थियों और शिराओं का ताना-बाना भी यथेष्ट रूप में सुदृढ़ और सहिष्णु नहीं हो पाता। शरीर की कोई शक्ति नहीं होती। चित्त की शक्ति ही प्रमुख बल है और चित्त की शक्ति ही प्रतिफलित होकर देह को शक्तिशाली बनाती है। अतएव, जिसमें मन महाशक्ति का ध्यान नहीं करता, जिस श्रम में शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग के ऊपर मन का प्रभाव क्रीड़ा नहीं करता, उसे अंग-संचालन के नाम से भले ही कहा जा सकता है किन्तु वह व्यायाम नहीं है। अंग-संचालन में देह के रक्त की गति मन से निरपेक्ष रहकर वर्धित होने के कारण स्वास्थ्य को अक्षुण्ण रखती है और सामान्यतया शक्ति को बढ़ाती है, किन्तु देह का राजा जो मन है वह उसके विशाल कोषागार की अमूल्य शक्ति-सम्पदाओं में से स्वल्पमात्र को भी प्राप्त नहीं कर पाता है। मन की उन सभी सम्पदाओं को यदि देह के भीतर प्राप्त करना हो, तो इस देह को मन की देखरेख में रखना होगा। मन की देखरेख में रहकर देह जब सुयोग्य बनेगी, तभी देह के लिए मन की समस्त समृद्धि का उत्तराधिकार प्राप्त करना सम्भव और स्वाभाविक होगा।

आजकल इस दुर्भाग्यशाली, दुर्दशाग्रस्त और अध:पतित देश में मनुष्यों की शक्ति अंधकार की गोद में प्रसुप्त पड़ी है। दानवों की दानवी शक्ति ने अपने को अद्वितीय मानकर घर-घर में पैशाचिक खेल आरम्भ कर दिया है। तुम्हारे द्वारा बहुत कष्ट से अर्जित अन्न-

राशि को शक्ति के दर्प में चूर दस्युओं ने छीन लिया है। तुम्हारे मन में शक्ति नहीं है, तुम प्रतिवाद भी नहीं कर पाते हो, शरीर में बल नहीं है, चुनौती का सामना करने में समर्थ नहीं हो पाते हो। जो शरीर मन की शक्ति को विकसित करने के अनुकूल भाव में गठित होना स्वीकार नहीं करता, उस अक्षम, पंगु शरीर के भीतर महान शक्तिशाली मन भी किसी निस्तेज, कारावासी शेर की तरह मृतवत् ही जीवित रहता है। इसीलिए आज घर-घर में परनारी के प्रति लोलुप-दृष्टि की लम्पटता अट्टहास करके तांडव-नृत्य कर रही है। किन्तु हाय रे दुर्भाग्य! सती के सतीत्व की रक्षा करने के लिए हममें से कोई भी अपने नश्वर जीवन की बलि नहीं दे सकता है। अरे भाई! हमारा शरीर तो मर गया है किन्तु हमने अविनाशी आत्मा को भी मरणशील ही मान लिया है और बारम्बार मरकर भी हम एक बार मरने जैसा नहीं मर पा रहे हैं। हमारा अतीव पवित्र उपासना-मंदिर पाखंड के पद-भार से दबकर धूल-धूसरित हो चला है, हम लोग एक बार भी संघबद्ध होकर उसके विरुद्ध दुर्लंघ्य प्रतिक्रिया-स्वरूप खड़े नहीं होते हैं। इस पौरुष-विलाप, नपुंसकता, जड़ता और इस मृतवत् जीवन को छिन्न-भिन्न करने के लिए तो, हे भाई! हमारे देह-मन में प्रचुर शक्ति चाहिए। आज केवल अंग-संचालन करके स्वभावतः स्वास्थ्य को बनाये रखने में समर्थ हो सकने को ही मैं यथेष्ट नहीं समझूँगा। आज तुम्हारे बाहुओं में ऐसी शक्ति चाहिए जो अत्याचारी के हृदय को कम्पित कर दे, जो बिना कुछ बोले अन्याय का समूल विनाश कर दे। जिस बाहु के सामने ज्वालामुखी पर्वत का धूम्रोद्गार रुक जाय, समुद्र की तरंग बीच में ही स्थिर हो जाए, तुम लागों के ऐसे ही सक्षम और सबल बाहुयुगल चाहिए। जो बाहु-बल संकेत मात्र से प्रलय कर

दे, पल भर में तूफान ला दे, इशारे से ही भूकम्प ला दे। आज मैं तुम लोगों का ऐसा ही बाहुबल देखना चाहता हूँ। जिस बाहुबल के रहने पर मनुष्य किसी भी विरोधी की सीमा नहीं स्वीकार करता, मृत्यु के विचार को मन के किसी कोने में भी जगह नहीं देता, वही बाहुबल मैं तुम लोगों में देखना चाहता हूँ। यह बाहुबल परपीड़न हेतु नहीं है, यह आत्म-रक्षा के लिए है, केवल मनुष्यत्व को अपमान-तिरस्कार से बचाने के लिए है, नारीत्व को, सतीत्व को असम्मान और अमर्यादा के विरुद्ध कवच से आवृत करने के लिए है। यही बाहुबल दुर्दशाग्रस्त मानव जाति का समस्त दुख दूर करेगा, इसीलिए आज मैं इसे चाहता हूँ। जिस स्वास्थ्य ने आत्म-तुष्टि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहा, सहजे आराम के अलावा और किसी से भी प्रेम नहीं किया, वह सुन्दर, सुडौल, सुगठित स्वास्थ्य नहीं चाहता हूँ।

व्यायामकालीन चिन्तन

इसलिए, आज तुम लोगों को अंग-संचालन की बात भूलकर व्यायाम की बात को स्मरण रखना होगा। व्यायाम करते समय प्रत्येक शिरा-उपशिरा के स्पन्दन के साथ-साथ उसी स्थान पर मन का ध्यान केन्द्रित करना और दृढ़ मन से साथ ही साथ ऐसा संकल्प करना– "विश्व के वृहत् कल्याण के लिए, विश्व के लोगों को दुख से छुड़ाने के लिए, समस्त दुःख-कष्ट-यातना को शांत चित्त से सहने के लिए मैं सभी अंगों में ऐसी अपूर्व शक्ति का संचार प्राप्त कर रहा हूँ जो समग्र विश्व की शक्ति-साधना के इतिहास में अतुलनीय और अपराजेय है। दांतों को भींचकर, श्वास-प्रश्वास को नियमित करके, मन को संयत रखकर प्रतिज्ञा करो– "मेरी यह शक्ति पर-पीड़ा

नहीं करेगी, स्वार्थ की ओर उन्मुख नहीं होगी।'' फिर यह भी प्रतिज्ञा करो– ''मेरी यह शक्ति सतीत्व का अपमान नहीं सहेगी, दुर्बल पर सबल का अत्याचार नहीं सहेगी, धर्माचरण की स्वाधीनता में अनधिकार-चर्चा की उद्धत अशिष्टता नहीं सहेगी।'' अन्त में, दृढ़ भाव से ऐसा विश्वास करो– ''मेरी यह शक्ति विश्व के स्रष्टा की ही महाशक्ति है, मेरी यह शक्ति अमोघ ब्रह्मशक्ति है। जिसके अनुशासन का कोई भी लंघन नहीं कर सकता, जिसकी प्रतिष्ठा कोई भी च्युत नहीं कर सकता, उसी अद्वितीय परमेश्वर के अपरिमेय ऐश्वर्य को मैं शक्ति और मनोबल के रूप में प्राप्त कर रहा हूँ। हर श्वास में मैं उन्हीं की महान शक्ति का अमृत आकंठ पान करके पापरहित और अपराजेय हो रहा हूँ। मेरी सारी शक्ति भगवान की है, मेरी समस्त सामर्थ्य भगवान की है, मेरा सारा पौरुष भगवान का है, मेरी समस्त संग्राम-विजय भगवान की है। भगवान के ही कार्य में भगवान की ही तेजोमयी शक्ति मुझे तेजस्वी और शक्तिमान कर रही है, उन्हीं भगवान के चरणों में मैं सम्पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर रहा हूँ।''

*

''जीवन को नाममय करो ।
नाम को जीवनमय करो ।।''
(साधन पथे-पृ० १३२) – श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द

अध्याय आठ
व्यायाम की उपयोगिता

ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले के लिए दैनिक व्यायाम नितान्त आवश्यक है। इससे देह की दृढ़ता और सबलता बढ़ती है, अंग-प्रत्यंग सुगठित और सुडौल होता है। देहकांति निखरती है, आलस्य दूर होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। व्यायाम से शरीर हल्का, सहज, लचीला और जड़ता से विरहित होता है। सभी अंगों के व्यायाम के परिणामास्वरूप वायु, पित्त, कफ साम्यावस्था में स्थित रहकर मन को प्रशान्त, प्रफुल्ल और प्रयास में पटु बनाते हैं तथा व्यायाम मस्तिष्क को स्निग्ध बनाकर प्रबल कष्टसाध्य परिश्रम में भी उसे सहज बनाए रखता है। इससे तेजस्विता, निडरता, उत्साह, अध्यवसाय, कष्ट-सहिष्णुता, धर्मपरायणता, एकनिष्ठता, आत्मनिर्भरता, आत्मश्रद्धा और आत्मोत्सर्ग की आकांक्षा जाग्रत होती है। सारांश यह है कि व्यायाम से समस्त मानवोचित गुण उत्पन्न होते रहते हैं। विशेष बात यह है कि इससे काम-दमन की प्रबल शक्ति वर्धित होती है और देह-मन की उत्तेजना के ऊपर व्यायाम-व्रती का असाधारण कर्तृत्व प्रतिष्ठित होता है। व्यायाम-काल में बिखरे हुए मन को अपने देह के निर्दिष्ट पेशीय अंगों पर एकाग्र करने से अनुदिन मन की एकाग्रता-शक्ति बढ़ती है। अत: सत्प्रसंग में मन को अधिक समय तक लगाए रखने और असत्-प्रसंग से मन को खींचकर लाने की सामर्थ्य व्यायाम के भीतर सहज ही संचित होती जाती है।

व्यायाम और मस्तिष्क की शक्ति

बहुत से लोग यह कहते रहते हैं कि व्यायाम करने से मस्तिष्क की शक्ति कम होती है और बुद्धिशक्ति में ह्रास होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी व्यायाम ही मस्तिष्क की सामर्थ्य को नष्ट करते हैं।* ऐसी बात अज्ञानी लोगों की कपोल-कल्पना और वाचालता मात्र है। व्यायाम से भोज्य रूप में ग्रहीत सभी चीजें सम्पूर्ण रूप से पच जाने के कारण देह में रस-रक्तादि सप्त धातुओं की प्रचुरता उत्पन्न होती है और उसका सारभूत तत्व वीर्य ही शरीर की अवस्थिति का मूल कारण है तथा समस्त बुद्धि और मनीषा का वही एकमात्र स्रोत है। व्यायाम से वीर्य अवश्य ही बढ़ता है, अतएव वास्तविक रूप में इससे मेधा भी बढ़ती ही है, घटती नहीं है। हमारे देश के स्कूलों-कालेजों के अच्छे बालक स्मरण-शक्ति कम हो जाने के भय से व्यायाम नहीं करते किन्तु निश्चित रूप से विनाशकारी जानते हुए भी मैथुन, कुविचार, अश्लील वार्तालाप छोड़ते कहाँ हैं? तर्क के रूप में यदि स्वीकार भी कर लें कि व्यायाम से प्रतिभा-विकास में बाधा उत्पन्न होती है, तो भी यह एक तरह से चिर-निर्धारित तथ्य है कि कुविचार, कुत्सित वार्तालाप, अश्लील दृश्य-दर्शन, गंदे स्पर्श, कुकर्म आदि से वीर्यक्षय होने पर स्मरण-शक्ति और धारणा-शक्ति की जो प्रबल क्षति होती है, व्यायाम से उसके दस हजारवें अंश की भी क्षति नहीं हो सकती। हमारे देश में बुद्धिजीवी लोगों में व्यायामशील लोगों की संख्या बहुत कम है, अतएव

* कुश्ती आदि की कोई-कोई व्यायाम-क्रिया कन्धे पर बहुत जोर डालती है। ब्रह्मचारी के लिए ऐसे व्यायाम अवश्य ही वर्जित हैं।

व्यायाम से बुद्धि-शक्ति का ह्रास होता है कि नहीं, यह देशी उदाहरण से प्रमाणित नहीं होगा। किन्तु पाश्चात्य देशों की ओर एक बार देखो, तो पता चलेगा कि जो लोग ज्ञान-विज्ञान और बौद्धिक सामर्थ्य में श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं, उनमें से अधिकांशत: आमरण व्यायामशील रहे हैं। दैहिक शक्ति प्राप्त करने का नशा पाश्चात्य देशों के अधिकांश लोगों में कंधे पर भूत की तरह सवार रहने के कारण ही वे लोग श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, अध्यापक, विचारक, कवि, वक्ता, इतिहासकार, रसायनशास्त्री और लेखक होकर भी, जीवन भर विश्रामहीन परिश्रम करके भी भारतीय वकील, मुंसफ, डिप्टी कलेक्टर की तरह, किसी तरह यौवन से प्रौढ़ता में पदार्पण करते ही अनेक जटिल व्याधियों से पीड़ित होकर, जीवन के समस्त सौभाग्य के दरबार से पेंशन लेकर नहीं बैठते। पाश्चात्य की भोगवादी सभ्यता का विषाक्त स्तनपान करके भी आजकल काव्य, साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि सभी विषयों में पाश्चात्य जगत् वर्तमान भारत को बहुत पीछे छोड़ने में समर्थ हो रहा है तथा और भी बहुत समय तक निर्विवाद रूप से जो ऐसा कर सकेगा, उससे ही यह प्रमाणित होता है कि व्यायाम का अभ्यास राष्ट्रीय सौभाग्य का ही सूत्रपात करता है, बुद्धि की सामर्थ्य को बन्ध्या बताकर राष्ट्र को दुर्दशाग्रस्त नहीं बनाता। फिर, सचमुच ही यदि बुद्धि-सामर्थ्य को थोड़ा कम करके व्यायाम हम लोगों को पाश्चात्य लोगों के समान आत्मनिर्भर, आत्मश्रद्धावान, स्वाधीनता-लोलुप करके उन्नत कर सके, तो उससे बुद्धि थोड़ी कम होने पर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

किन्तु सच्चाई यह है कि अति बुद्धि के फलस्वरूप ही हमारे गले में फन्दा पड़ा है। बुद्धि के आग्रह से हमने मनुष्यत्व की

दाढ़ी को उखाड़कर फेंक दिया तथा अयाचित रूप से अपने को दूसरों की भोग्य-वस्तु बनाकर रखा है। बुद्धि कम होने पर तथा थोड़ी मूर्खता बढ़ जाने से हम संघबद्धता को भंग नहीं करते, सत्संग को नहीं खोते और अंगहीन नहीं होते। मूर्खों में आपस में उकसाने और तंग करने का भाव नहीं होता, तीखी और कठोर बातें रहने पर भी कुटिल आचरण नहीं होता, शक्ति का संघर्ष होने पर भी उधार ली हुई दूसरे की मदद नहीं होती। मूर्ख लोग चाकू चलाना जानते हैं किन्तु चाकू की धार पर शहद लगाना नहीं जानते, सामने से दो थप्पड़ लगा सकते हैं किन्तु अंधेरे में गुप्त बाण नहीं छोड़ सकते। व्यायाम इस तरह नंगा ओर सरल बनाकर हम लोगों की बुद्धि को जहर से सुरक्षित रखता है, तभी तो व्यायाम हमारी अपरिहार्य आवश्यकता है।

व्यायाम और खेल

फिर बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि व्यायाम नहीं करके खेल खेलने से भी तो काम चल सकता है। किन्तु खेल और व्यायाम में बहुत अन्तर होता है। खेल के समय तुम्हारा मन तुम्हारे शरीर में नहीं रहता, खेल में रहता है। फुटबाल का खिलाड़ी देह-गठन की ओर ध्यान नहीं रखता, एकमात्र फुटबाल की ओर ही ध्यान रखता है। उसका मन उसके शरीर पर केन्द्रित होकर संचालित नहीं होता, पद-प्रहार से संचालित फुटबाल जब जहाँ जाता है, तब उसका मन वहीं रहता है। इसीलिए मन में संयम-शक्ति जाग्रत नहीं हो पाती। खेल आनन्ददायक होता है। इच्छा के विपरीत बलपूर्वक पढ़ाई-लिखाई कराकर हमने देश के छात्रों के अध्ययन से आनन्द को

निष्कासित कर दिया है। किन्तु ज्ञान-प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा से प्रेरित होकर जिन लोगों ने स्वाधीन रूप से अध्ययन आदि किया है, उन लोगों का मुखमंडल आनन्द के आलोक से ज्योतिर्मय होकर रहता है। मनुष्य के प्राणों का आकर्षण जहाँ चला जाता है, उसके मन का आनन्द भी स्वच्छन्द गति से वन में विचरणशील उन्मुक्त पक्षी की तरह वहीं निर्बाध रूप से सक्रिय हो उठता है। व्यायाम को स्कूल के ड्रिल (शारीरिक व्यायाम) की तरह बाध्यकारी बना देने पर कोई भी कार्य नहीं होगा। सबके सामने एक ऐसे अद्‌भुत जीवन का चित्र प्रस्तुत करना होगा, सबके हृदय-पटल पर एक ऐसा पौरुषपूर्ण और परिशुद्ध आदर्श अंकित कर देना होगा जिससे सभी व्यायाम के प्रति खेल से भी अधिक प्रेम और लगाव रख सकें। व्यायाम मुझे मानव-समाज में सबके ही समान सिर ऊँचा करके खड़ा करेगा, यही बात मन में सदैव जाग्रत कर देनी जरूरी है। तुम्हीं लोग इस बात को सार्वजनिक रूप से सभी के मन में जाग्रत करो, यह अकेले मेरे प्रयत्न से नहीं होगा। किन्तु यदि सबके भीतर विश्व-कल्याण की कामना जगाना चाहते हो, तो इसे मन के भीतर भी जगाना होगा। खुद सोते हुए दूसरे को जगाया नहीं जा सकता, स्वयं बद्ध रहकर दूसरे के बन्धन को नहीं खोला जा सकता है।

व्यायाम की मात्रा

आयु, बल, देश, काल और आहार आदि का विचार करके बल की आधी मात्रा में व्यायाम करना चाहिए अर्थात् व्यायाम करते-करते जब मुख से साँस बाहर आने लगे, तब तक व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम के बाद अंग-प्रत्यंग की मालिश विशेष

हितकारी है। इससे व्यायाम का सुपरिणाम अत्यधिक सहज भाव से दृष्टिगत होता है और वह फल स्थायी भी होता है। चर्बी का ह्रास और त्वचा में निखार तो आएगा ही।

व्यायाम में विश्राम

व्यायाम के साथ शरीर से निकले पसीने को पोंछना नहीं चाहिए, शरीर पर सूखने देना चाहिए। व्यायाम के पश्चात् समुचित ढंग से विश्राम करना जरुरी है। कभी भी बैठकर विश्राम नहीं करना चाहिए। धीरे-धीरे अंगों को हिला-डुलाकर चलते हुए विश्राम करना चाहिए। परिश्रम के पश्चात् अचानक विश्राम करने से तेज गति से प्रवाहित रक्त बाधित होकर वायु को कुपित करता है और उससे अनेक बीमारियों को उत्पन्न करता है। व्यायाम के बाद अभ्यास के अनुसार प्रात:कालीन स्नान करना चाहिए। जो लोग प्रात: स्नान नहीं करते, उनको गीले कपड़े द्वारा सारे शरीर को पोंछकर स्वच्छ करना चाहिए।

स्नान और तेल मालिश

ब्रह्मचारी के लिए तीनों समय स्नान करना विशेष हितकारी है किन्तु यह भी सबके लिए निर्विचार भाव से विधेय नहीं है। पित्त या वायुप्रधान लोगों को यह सहनीय होगा किन्तु कफ-प्रधान या वीर्यक्षयादि के लक्षण वाले अत्यधिक दुर्बल देह में यह प्रथमत: सहन नहीं होगा। अतएव, अपनी-अपनी शारीरिक स्थिति को समझ-बूझकर तीन बार स्नान की व्यवस्था करना उचित होगा। कई जगहों पर पीने लायक पानी तो दूर की बात है, स्नान के योग्य स्वच्छ जल मिलना भी दुष्कर काम है। ऐसी जगहों पर स्वास्थ्य ठीक रखने के

लिए लोग दूरवर्ती जलाशयों में जाकर स्नान और अवगाहन करते हैं। ऐसे लोगों के लिए तीन बार स्नान लाभप्रद नहीं है क्योंकि स्नान के द्वारा शरीर में जो स्निग्धता संचरित होती है, वह पथ-संचलन से बाधित हो जाती है। वर्षा-ऋतु में भी तीन बार स्नान कई बार हानिकारक होता है। तीन बार स्नान प्रथमत: प्रारम्भ करने के लिए अग्रहायण (नवम्बर) मास ही सर्वोत्कृष्ट समय होता है।

स्नान के पूर्व सभी अंगों में तेल-मालिश करने का निषेध किया जाता हैं। प्राचीन काल में तेल आदि से मालिश को विलासिता माना जाता था और स्वभावत: सभी लोगों के सुदृढ़ शरीर होने के कारण बाल-बच्चों के लिए ब्रह्मचर्य-अभ्यास के समय तेल-मालिश अनावश्यक होती थी। इसी कारण उसे निषिद्ध किया गया था। आजकल के युग में देशाचार आदि के अनेक परिवर्तन होने से जो पहले अनावश्यक था, उसमें से बहुत कुछ वर्तमान समय में आवश्यक हो गए हैं। विविध प्रकार के सामाजिक और ऐतिहासिक विकास-क्रम में समाज-गठन की धारा प्राचीन युग से पृथक् हो चली है। आज प्राचीन युग की बातों का शत प्रतिशत अनुकरण करना सम्भव नहीं है और कई जगहों पर वह तर्कसंगत भी नहीं है। कई क्षेत्रों में प्राचीन बातों की बलपूर्वक नकल करके शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए, ऐसी बात नहीं होनी चाहिंए। समग्र विश्व में जहाँ भी, जिस युग में कुछ सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, उसे ही चयन करके तथा ले आकर भारत के उद्यान में एक अद्भुत युग-संगम और सभ्यता-समन्वय साधित होगा। इसी कारण, प्राचीनता के प्रति पूरी श्रद्धा रखकर भी उसमें प्राचीनता के प्रति स्वजन-सुलभ मोह का परित्याग करना होगा। प्रसंगवश, यहाँ इतना ही संकेत करके छोड़ देता हूँ।

वर्तमान समय के लोगों का स्वास्थ्य ही इतना दुर्बल हो गया है कि तेल-मालिश जैसी एक इतनी हितकारी बात को विलासिता कहकर उड़ा नहीं सकता हूँ। सिर पर तेल मालिश करने से सिर के रोग दूर होते हैं, नेत्रों की चमक बढ़ती है, कफ और वायु के प्रकोपजनित रोग चले जाते हैं। इससे केश कोमल, घुँघराले, लम्बे, घने, स्निग्ध और अधिक मात्रा में उगते हैं तथा केश-विरलता और गंजापन दूर होता है। इससे मस्तिष्क शीतल, स्निग्ध और परिपुष्ट होता है। पूरे शरीर में मालिश करने से देह कोमल, शीतोष्णादि-सहिष्णु, श्रम में अथक, अचानक गिरने या आघात की स्थिति में सुदृढ़ रहता है तथा कफ और वायु का समन्वय करके धातुओं को पुष्ट, रक्त-शिराओं को विशुद्ध, देह-चर्म को चिकना करके बल और रंग को निखारता है। पदतल में तेल-मालिश करने से अच्छी नींद आती है, नेत्र-ज्योति बढ़ती है, थकावट और आलस्य का नाश होता है तथा पैदल चलने की शक्ति अटल रहती है। कानों में तेल लगाने से जबड़ों, मस्तक और कानों का दर्द दूर होता है। जो तेल-मालिश इतनी लाभदायक है, उसे केवल प्राचीन होने के कारण वर्जित नहीं कर सकता। कहावत है– "बंगाली का शरीर तेल और जल से ठीक रहता है।"

फिर भी एक बात यह है कि प्रातःकाल व्यायाम करने वालों के लिए तेल-मालिश करके प्रातःस्नान करना उचित नहीं होगा क्योंकि व्यायाम के बाद पसीने से लथपथ शरीर पर अथवा शुष्क स्वेदयुक्त शरीर पर तेल-मालिश करने से उसका उद्देश्य ही निष्फल हो जाएगा। अतएव प्रातःस्नान करने वाले लोगों को बिना तेल-मालिश के अथवा सिर पर थोड़ा सा तेल लगाकर स्नान करना चाहिए और दोपहर में स्नान के पहले आधे से एक घंटे तक अच्छी

तरह तेल-मालिश करनी चाहिए। तेल-मालिश करते समय इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए, "मेरा शरीर स्वस्थ, सबल, कांति-पुष्टि से परिपूर्ण और उज्ज्वल हो रहा है, देह के सभी रोग और दुर्बलताएं दूर हो रही हैं तथा शरीर स्वच्छन्द, सुन्दर और सुडौल हो रहा है।" जो लोग तीन बार स्नान के अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें दोपहर का स्नान नौ बजे के पूर्व ही कर लेना आवश्यक है।

व्यायाम के पश्चात् अंगों की मालिश के जो सब नियम हैं, उन सभी नियमों का तेल-मालिश के समय भी उसी तरह पालन करना लाभप्रद है। जैसे कि दाहिने हाथ की मालिश करते समय मांसपेशियों को बाईं से दाहिनी ओर मरोड़ना होता है तथा दाहिने बाहु के मालिश के समय मांसपेशियों को दाहिने से बाईं ओर मरोड़ना होता है। बाएं हाथ और बाएं बाहु की मालिश के समय इसके ठीक विपरीत करना होता है। वक्षस्थल की मालिश के समय वक्षस्थल की मांसपेशियों को ऊपर से नीचे की ओर न ठेलकर नीचे से ऊपर की ओर मरोड़ना या ठेलना चाहिए।

तेल-मालिश के बाद स्नान करना चाहिए। स्नान करने से उत्तेजित शरीर के स्नायुसमूह स्निग्ध होते हैं, शरीर का आलस्य दूर होता है, रोमकूपों में संचित स्वेदादि से उत्पन्न गंदगी दूर होती है, इन्द्रियाँ प्रफुल्लित होती हैं, रक्त शोधित होता है, जठराग्नि उद्दीप्त होती है, तन्द्रा नष्ट होती और थकावट दूर होती है। स्नान के समय सर्वप्रथम जल सिर पर डालना चाहिए, तदुपरान्त पूरा स्नान करना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर देहस्थ रक्त मस्तिष्क में संचरण करके सिर की बीमारियाँ उत्पन्न कर सकता है। स्नान के समय शरीर को अच्छी तरह रगड़-रगड़कर स्वच्छ करना चाहिए। डुबकी लगाकर

स्नान न करके लोटे से सिर पर जल डालकर स्नान करने से अधिक लाभ मिलता है। फिर, यदि अंजलि में जल लेकर सिर के ऊपर डालकर दोनों हाथों द्वारा उसे मस्तक पर संचारित कर सको, तो यही सर्वोत्तम होगा।

स्नानोपरान्त उपासना

स्नान के बाद सूखा और स्वच्छ वस्त्र पहनना चाहिए। पद-प्रक्षालन करके पादुका ग्रहण करके शुद्ध चित्त और साफ मन से उपासना में मन को एकाग्र करना चाहिए। उपासना करने का कोई भी समय नहीं है–

"उन्हें पुकारने को क्या दिन, क्या रात ।
सुबह या दोपहर का क्या प्रयोजन ?"

– (सतीशचन्द्र)

जितनी बार इच्छा हो, उतनी बार उपासना करो। किन्तु प्रारंभिक साधक के लिए निर्दिष्ट समय पर उपासना करना आवश्यक है, अन्यथा निष्ठा और स्वावलम्बन तथा मन:संयम की सफलता में बहुत विघ्न पड़ता है। तुम लोग दिन में चार बार उपासना करना यथा– भोर में, दोपहर-स्नान के बाद, सान्ध्य-स्नान के बाद और शयन के पूर्व। महापुरुष से मंत्र या उपदेश प्राप्त करने के बाद तदनुसार उपासना करनी चाहिए अन्यथा अपने मन को पूरी तरह खोलकर, भगवान के समक्ष नि:संकोच भाव से, अकल्याण के विनाश और कल्याण के उद्बोधन की प्रार्थना करनी चाहिए। संस्कृत, हिब्रू या अरबी भाषा में भगवान को नहीं पुकारने से वे प्रार्थना नहीं सुनेंगे, ऐसी बात असत्य है। चाहे जिस भाषा में प्रार्थना करो, चाहे जैसे भी आत्मनिवेदन करो, वे तो सर्वान्तर्यामी हैं, वे तो भावग्राही हैं,

वे तुम्हारी सरल और व्याकुल हृदय की प्रार्थनाओं को निश्चय ही सुनेंगे। उपासना की भाषा में किसी कवित्व को मत रखना। कई बार कवित्व के साथ असत्य आकर आँख-मिचौनी करता है। जो सत्य है, जो निर्भ्रान्त है, उसे ही भगवान के सामने निष्कपट हृदय से व्यक्त करना। यही उपासना की मूल बात है।

*

''उपासना है अंधकार में, ज्योतिर्मय आलोक ।
दूर करे अविश्वास, दुःख, मोह, शोक ।।
—श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द

अध्याय नौ

क्या प्रार्थना करें?

क्या प्रार्थना करें, यह निश्चय ही एक जटिल प्रश्न है। जो सर्वनियंता हैं, सर्वेश्वर हैं, उनसे क्या मांगें? वे तो कल्पतरु हैं, जो चाहूँगा, वही पाऊँगा किन्तु उनसे क्या चाहना या मांगना होगा, यही तो नहीं समझ पा रहा हूँ।

अच्छा, धन चाहने से क्या काम नहीं होगा? बोरे-बोरे भर धन एकत्र करने से सुख-शांति तो होगी ही, साथ ही खूब परोपकार भी किया जा सकेगा। भिक्षुक को भिक्षा, अतिथि को अन्न और आश्रय चाहने वाले को आश्रय दिया जा सकेगा।

किन्तु यह गलत समझ रहे हो। रूपये-पैसे से मिथ्या ध्वनि निकलती है, इसीलिए ऐसा समझते हो कि यही सुख है, यही शांति है, इसी में मानव जीवन की आशा-आकांक्षा की पूर्ण परितृप्ति है किन्तु यथार्थ तौर पर ऐसा कुछ नहीं है। यदि तुम रूपये की खान भी पा जाओ, तो देखोगे कि कामनाओं की पूर्ति द्वारा कामनाओं की शांति या तृप्ति नहीं होती। यदि 'चाहिए, और चाहिए' की आवाज समाप्त नहीं हुई, तो कहाँ तुम्हारी शांति और कहाँ तुम्हारा सुख? धन की झंकार के साथ ही साथ, उसी धन की थैली या बोरे से अशांति भी आती है। तुम धन के द्वारा जितना ही सुख खरीदना चाहोगे, उतना ही देखोगे कि उद्वेग और आशाएं गयाधाम के भूत की तरह और भी बलपूर्वक तुम्हारे सिर पर सवार होकर बैठ गई हैं और जब उसका भार और दबाव असह्य हो जाएगा, तब 'बाप-बाप' कहकर तुम भागना चाहोगे किन्तु भूत का कम्बल तुमको नहीं छोड़ेगा। लोभ

और लालसा से आँखें ढकने पर यह बात सहज ही समझ में आ जाती है किन्तु उसे दूरबीन से देखने पर भी नहीं दिखती। फिर यदि धन को लेने से सुख होता भी हो, तो भी वह सुख क्या कभी चिरस्थायी होता है? धन-सम्पत्ति बिजली की ही तरह चंचल है, जल के बुलबुलों की तरह क्षणभंगुर है, दीपशिखा की ही तरह अस्थिर तथा कांच के टुकडों की ही तरह भंगुर है। किन्तु उससे परोपकार तो हो सकेगा! यह बात सुनने में बड़ी ही मधुर है किन्तु वास्तविकता में, हजार नहीं, तो सौ में से निन्यानबे लोगों के जीवन में छिपी हुई लालासाओं के बेगार करने वाले ठेले के अतिरिक्त कुछ नहीं है। तुम्हारे अच्छे दिनों में दुर्भाग्यग्रस्त पीड़ित व्यक्ति आकर अपने दुख की बातों से तुम्हारे कानों के कीड़ों को बाहर कर सकता है किन्तु हाथ से चवन्नी भी नहीं निकाल सकेगा। वह सम्भवत: तुम्हारे नेत्रों में आँसू ला सकेगा किन्तु उनसे चिउड़ा भिगोने भर का भी जल नहीं पाओगे। तब तुम विलास के मंडप में सम्भवत: यम के सहायक बनकर बैठो, पृथ्वी को ही मिट्टी का कसोरा (कटोरा) समझकर अपने हुंकार से धरती को कम्पित कर सकते हो। तब फिर कहाँ रहेगी दीनों के पालन की भीष्म-प्रतिज्ञा और कहाँ रहेगा तुम्हारा परोपकार का धनुष-भंग करने का प्रण? फिर यदि सौभाग्य से सीप के मुख में स्वाति-नक्षत्र के जल की बूँद पड़ जाए, तो भी उससे तुम्हारे लिए गौरव की क्या बात है? दूसरे के धन की रखवाली करने में क्या पौरुष? क्योंकि यह जो पार्थिव जगत् है, इसकी समग्र समृद्धि पर सभी का समान अधिकार है। तुम दूसरों को वंचित करके अपनी सन्दूक में उसे संचित कर सको हो, इसीलिए तो वह समृद्धि तुम्हारी हुई है, यह बात कोई न्यायप्रिय व्यक्ति स्वीकार करेगा? तुम्हारा जो अपना धन

है, उसे दूसरों को देने में मैं तुम्हारा पौरुष स्वीकार कर सकता हूँ, तुम्हें सिर पर बैठाकर नृत्य कर सकता हूँ। वह धन तुम्हारा ही है। उसे दे सकने पर दान जैसा ही दान होगा, फिर जीवन रूपी दान तो पूरी तरह से धन-निरपेक्ष है। अतएव,धन की प्रार्थना सभी प्रकार से निरर्थक है।

यदि तुम रूप, यौवन, बल-पराक्रम की प्रार्थना करना चाहते हो, तो यह भी तुम्हारा भ्रम है। रूप-यौवन की प्रार्थना करने से कोई लाभ नहीं है। इसके द्वारा तुम्हारा अपना चिरकालिक कल्याण या जगत् का मंगल होने की सम्भावना कम है। बल-पराक्रम जगत्कल्याण में लगने पर ही सार्थक होता है। दूसरों के लिए आत्मत्याग या आत्मबलिदान, बल-पराक्रम की सहायता से सुशोभित होता है किन्तु बल-पराक्रम की प्राप्ति तुम्हारे लिए भगवन्निर्दिष्ट पथ पर इतने सहज रूप में पौरुष से सिद्ध हो सकती है कि इसके लिए भगवान से प्रार्थना न करके भक्ति-भाव से उन्हें स्मरण रखते हुए व्यायामादि का अभ्यास और सभी तरह के प्रयत्नों से वीर्य-रक्षा करना ही यथेष्ट है।

तो फिर क्या प्रार्थना करें? यही प्रार्थना करना कि "हे मेरे सर्वस्व! मुझे तन्द्रा और आलस्य से भरपूर मेरे चित्त की कठोर लांछना से जगा दो, मुझे आत्म-जयी एवं आत्मत्यागी बना दो।

"मुझे यह समझा दो कि तुम ही मेरे अपने हो, तुम्हारा विचित्र विकास-क्षेत्र यह जगत् मेरे भी विकास की भूमि है। जगत् के सभी मेरे अपने हैं और मैं भी सभी का हूँ। मुझे यह समझा दो कि तुमको प्रेम करके मैं जगत् को प्रेम करता हूँ और जगत् को प्रेम करके तुमसे ही परम प्रीति स्थापित करता हूँ। मुझे इस तरह प्रबुद्ध करो जिससे मैं यह न भूलूँ कि अनन्त कोटि जीवों के प्रति निर्मल मैत्री

और प्रीति का द्वार उन्मुक्त नहीं होने पर तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम में अवरोध बना ही रहेगा।

"हे प्रार्थित प्रभु! जब मैं स्वार्थान्ध हो जाऊँ, तो तुम वज्र रूप में आकर मेरे सिर पर प्रचण्ड वज्रपात-ध्वनि के साथ गिरना– मुझे बता देना कि मैं अन्यमनस्क होकर विपथगामी हो रहा हूँ। दूसरे को ठगकर मैं खुद को ठगता हूँ, दूसरों को मारने का प्रयास करके मैं खुद पर प्रहार करता हूँ। कदम-कदम पर मुझे स्खलित करके, मेरा हाथ-पैर तोड़कर तुम मुझे ही समझा देना। धोखा-कपट-चतुराई के कुटिल पथ से तुम मुझे हटा दो ओर हृदय के प्रत्येक स्पंदन के साथ-साथ यह बोलते जाओ– "इस जगत् में कहीं भी ऐसी ऊसर भूमि नहीं है जिसे हृदय का सरस स्पर्श प्रफुल्लित और हर्षित नहीं कर सके, इस जगत् में ऐसी कुत्सित वस्तु कहीं भी नहीं है जिसे प्राणों की असीम प्रीति सुन्दर नहीं बना सके, इस जगत् में ऐसी अपवित्र वस्तु कहीं भी नहीं है जिसे आत्मा की पवित्रता पवित्र नहीं बना सके।" पाखण्डपूर्ण तुष्टीकरण की मनोवृत्ति से तुम मेरी रक्षा करो। अभिनयपूर्ण अनुराग से मेरी रक्षा करो, अपवित्रता रूपी अस्पृश्यता से मुझे दूर रखो। मुझे बन्धुओं-सज्जनों और मित्रों के प्रति प्रेमपूर्ण रखो तथा अन्य सभी लोगों के प्रति और भी अधिक ममताशील बनाओ।

"हे भगवान् ! सारे कर्मों का भार मेरे कन्धों पर डाल दो जिससे मैं अधिकाधिक भार देखकर पराङ्मुख न हो सकूँ। मैं मुख से मूक रहकर कर्मों से मुखर हो सकूँ, वंशगत कुलीनता छोड़कर तपस्या में कुलीन बनूँ, पर्वत-शिखर देखकर ठिठककर खड़ा न हो जाऊँ, अपने कदमों से उसके उन्नत शिखर को अवनत कर सकूँ,

बाधा-विघ्नों की विशालता-प्रचुरता देखकर आत्मनिर्भरता को न खो सकूँ, तुम्हारे परम मंगलमय, शक्तिस्रोत नाम का उच्चारण करके यत्र-तत्र अवहेलनापूर्वक तुम्हारे विजय-निशान को अंकित कर सकूँ, मैं अपने गौरव को प्रतिष्ठित करने की कामना न करूँ, मन-वचन-कर्म से एकमात्र तुम्हारी ही अद्वितीय महिमा का अनुसरण करूँ। मेरी बाधाएँ मुझमें शक्ति का स्फुरण करें, मेरी सामयिक पराजय अन्ततः सफलता अर्जित करे और मेरी शक्ति और सफलता तुम्हारी महिमा में विलीन हो जाय।

"हे भगवान् ! मेरे समस्त विश्वास और अविश्वास को मेरे बुद्धि-विचार के आश्रित न रखकर, वास्तविक कर्म के प्रत्यक्ष आलोक में सत्य या मिथ्या के रूप में प्रमाणित करो। अपनी सजग-दृष्टि के पहरे में रखकर मेरे अन्दर-बाहर को समान रूप से विकसित करो, मुझे सुन्दर बनाओ, उज्ज्वल बनाओ और सार्थक बनाओ तथा मैं मनुष्यों को शिक्षा देने हेतु न जाऊँ। मेरा आचरण सभी के प्राणों में स्वाधीन चिन्तन को प्रस्फुटित करे किन्तु तुम मुझे वचन-रहित, एकनिष्ठ बनाकर रखो। मैं दूसरों को देश के कार्य में, समाज के कार्य में आह्वान न करूँ, सबके भीतर मेरा जितना कुछ विकास मेरी तपस्या से हुआ है, बस उतना ही आत्मा की शक्ति से आकर्षित कर सकूँ। मेरा चित्त नेतृत्व की इच्छा का परित्याग करे, प्रभुत्व की लालसा छोड़ दे। सभी के कार्यों में दोषों को खोज निकालने की तीक्ष्ण दृष्टि मैं नहीं चाहता, मैं अतुल धनराशि नहीं चाहता, जगत्-संचालिका शक्ति भी नहीं चाहता, बस केवल मनुष्य बन सकूँ। हे विधाता! हे जीवन के प्रभो! तुम मुझे मनुष्य बना दो। ऐसा मनुष्य बनाओ जो मनुष्य किसी भी अंश में दुर्बल न हो, कर्मों के किसी भी

अंश में कायर न हो, जीवन में मृत्यु से भयभीत न हो और मरण में जीवन के लिए अनुतप्त न हो।

"हे सर्वव्यापक! आनन्द की ज्योति के रूप में तुम मेरे दोनों नेत्रों में अधिष्ठित हो जाओ। जिनकी बातों से आनन्द हो, जिनकी स्मृति से आनन्द हो, जिनको देखकर आनन्द हो, केवल उन्हीं को देख पाऊँ अथवा सभी के भीतर मेरी सभी इन्द्रियाँ उनका ही रसास्वादन करें। हे परमानन्द! हे मेरे सर्वेश्वर! मेरे समग्र अहं के भीतर तुम ही समाविष्ट हो जाओ। हरि ॐ।"

*

अध्याय दस

उपासना की विभिन्न पद्धतियाँ

आनन्दस्वरूप ईश्वर में अपनी आत्मा को निमज्जित करके परम परितृप्ति प्राप्त करने के अनेक प्रकार के उपाय हैं। इनमें से किसी एक अथवा स्थिति विशेष में एक से अधिक उपायों का अवलम्बन करके शांति और आनन्द की प्राप्ति के प्रयास को उपासना कहा जाता है। अपने-अपने धर्मानुकूल संस्कारों, पूर्वजों से प्राप्त मस्तिष्क, पूर्वजन्मार्जित साधना तथा परिस्थितियों से सुलभ रुचि-स्वभाव के गठनानुसार अथवा देश-कालादि के भेद और विषमता के आधार पर उपासना-पद्धतियों की पृथकता दृष्टिगोचर होती है। कोई-कोई लोग ईश्वर की उपासना नाम-रूपादि-रहित, संयोग-वियोग, जन्म-मृत्यु, सुख-दुखादि सभी परस्पर विरोधाभासी गुणों से अतीत, उदासीन जानकर करते हैं– ये लोग निर्गुणोपासक हैं। कोई-कोई लोग उन्हें सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य-शुद्ध, शाश्वत, चिरकल्याणमय, सर्वाधार, सर्वनियंता और सर्वेश्वर जानकर उनकी उपासना करते हैं– ये लोग सगुणोपासक हैं। कोई-कोई लोग उन्हें पूज्य समझकर मानसोपचार से पूजा करते हैं। इस तरह की उपासना को भजन कहते हैं। फिर कोई-कोई लोग उनकी विशेष शक्तियों की काल्पनिक मूर्ति या प्रतिमा बनाकर उसे प्रतीक या उपलक्ष्य मात्र जानकर विविध प्रकार की पार्थिव पूजन-सामग्री से उनकी बाह्य पूजा करते रहते हैं– इस प्रकार की उपासना को अर्चना कहते हैं। कोई-कोई लोग ईश्वर के सर्वव्यापित्व, सर्वसाधारणत्व का अनुसरण करने में असमर्थ होकर

अपनी रुचि या पसन्द के अनुसार किसी भी सीमाबद्ध, सुन्दर या भीषण, सचल या अचल विग्रह की ही सृष्टिकर्ता ईश्वर के भाव से पूजा करते हैं– यह भी अर्चना है। कोई-कोई लोग एकमात्र भगवत्-प्रेरित होकर भी मानो फलाफल-प्राप्ति की आकांक्षा से विरहित होकर भगवत्-उपासना करते हैं– इसे निष्काम उपासना कहते हैं। फिर कोई-कोई लोग "धनं देहि" (धन दो) "यशो देहि" (यश दो) तथा "द्विषो जहि" (शत्रुओं का नाश करो) आदि कहते हुए स्तव-स्तुति द्वारा देवता की कृपा या करुणा की याचना करते हैं– इसका नाम आराधना है। ये सभी उपासना के विविध प्रकार हैं।

जितने मत, उतने पथ

उपासना की प्रत्येक पद्धति का साधक-समाज में आदर है तथा प्रत्येक पद्धति के माध्यम से ही उपासकों ने युग-युग में परम कृतार्थता प्राप्त करके परम शांति प्राप्त की है। अतएव, यही कहना होगा कि इनमें से कोई भी पद्धति व्यर्थ नहीं है। विभिन्न लोगों के जीवन में विभिन्न साधनाओं की धारा प्रवाहित होती है किन्तु प्रत्येक धारा परमात्मा के आनन्द-सागर में जाकर मिली है। इसीलिए समग्र विश्व के लिए किसी एकमात्र निर्दिष्ट साधना-पद्धति को प्रतिष्ठित करने का प्रयास असम्भव और मूर्खतापूर्ण है। विश्व का इतिहास देखोगे, तो इसके अकाट्य प्रमाणों का अभाव नहीं रहेगा। फिर एक निर्दिष्ट साधना-पद्धति का विश्वासी या संघबद्ध होकर प्रत्येक के द्वारा उसी पद्धति को लागू कराने की जिद करके विश्व में कितनी अशांति और अधर्म आया है, इसकी कोई सीमा नहीं है। भिन्न मतावलम्बी को अपने मत-पथ में लाने के लिए अस्त्रों की टंकार और रक्तरंजित

समाज का दृष्टांत भी विरल नहीं है। किन्तु क्या ऐसे लोग अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके हैं या कर पाएंगे?

जितने मत, उतने ही पथ हो सकते हैं। कोई भी अपने भावविशेष के अनुसार साधना करता है, तो उपासना-काल में वह उपास्य के सान्निध्य का अनुभव अवश्य ही करेगा। संथाली भक्त जब विचित्र, बेडौल और कुरूप प्रस्तर-मूर्ति को ही सृष्टिकर्ता और सबके स्वामी जानकर प्रेम से भरपूर होकर मुर्गों की बलि देते हैं, तब वे जैसे अपने देवता के सान्निध्य का अनुभव करके रोमांचित देह से प्रेमाश्रुसिक्त होते हैं, सगुणोपासना की श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त एक असीम ब्रह्मोपासक भी वैसा ही सान्निध्य अनुभव करते हैं। इनमें कोई भेद नहीं है किन्तु साधन की सूक्ष्मता से युक्त बाहरी अभिव्यक्ति और सान्निध्य की प्रगाढ़ता का भेद तो रहता ही है। किन्तु साधन की सूक्ष्मता की प्राप्ति भी साधन-सापेक्ष होती है। नीचे से ही ऊपर उठा जाता है, स्थूल से ही सूक्ष्म में जाना होता है। जिनके लिए स्थूल का कार्य सम्पन्न हो चुका है, वे तो सूक्ष्म में जाएंगे ही, उसमें बाधा कौन देगा? जिनके लिए स्थूल का कार्य समाप्त नहीं हुआ है, उन्हें बलपूर्वक खींचकर सूक्ष्म में लाने की चाह से, खींचतान से उनके प्राणों को बचाना कठिन होगा। इतिहास यही बताता है कि सभी अपने-अपने मत और विश्वास को श्रेष्ठ और सूक्ष्म समझकर दूसरों को तथाकथित रूप से कमतर और स्थूल गंदगी (अस्वच्छता) से बचाना चाहते हैं किन्तु उन लोगों की वह बलपूर्वक की गई खींचातानी सफल कहाँ हुई? कितने ही आचरण-भ्रष्ट शूद्र यज्ञोपवीत धारण करके भी यथार्थ ब्राह्मण नहीं हुए क्योंकि बलपूर्वक ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त किया जा सकता, यह तपस्या से प्राप्तव्य है। कितने ही ब्राह्मणादि उच्च वर्णों के हिन्दू

समानता प्राप्त करने के संकल्प से ईसाई होकर भी शूद्र या पंचम जातीय निम्न ईसाईयों के साथ एक आसन पर नहीं बैठ पाए। कितने ही लोग अपने विचार और ज्ञान से अद्वैत के उपासक और ब्रह्मज्ञानी होकर भी वास्तविक रूप से स्वमत-निंदित प्रतीकों को सम्यक् रूप से नहीं छोड़ पाए। उसके कितने दृष्टान्त दिए जाएं?

अतएव, मैं तुम्हें उपासना की किसी भी विशिष्ट पद्धति का अवलम्बन करने को नहीं कहूँगा। जानने के लिए व्यग्र बनो, समझने के लिए व्याकुल होओ। दिव्य दर्शन की तरह तुम्हारा सहजात साधन तुम्हारे भीतर जाग्रत होगा। शायद कोई मनुष्य-रूपधारी भगवान की करुणा के विग्रह उसके लिए तुम्हें जगाने के उत्तेजक कारण हो जाएं अथवा तुम्हारे समग्र सौभाग्य के उदय होने के परिणामस्वरूप वह तुम्हारे भीतर पूर्णत: निरपेक्ष ढंग से और स्वत:सिद्ध रूप में जाग्रत होगा।

*

"तेरे मन में क्या रहे ना।
जगत् में सभी को अभी है कितना देना?।"
श्री श्री स्वरूपानन्द

अध्याय ग्यारह

स्वाध्याय-सेवा

उपासना के बाद कुछ समय स्वाध्याय-सेवा करना अर्थात् सुविधा और सुयोग के अनुसार वेद, उपनिषद, गीता, योगवाशिष्ठ, रामायण आदि तथा प्राचीन और आधुनिक युग के महापुरुषों के तत्वोपदेशों वाले धर्मग्रंथों का नियमित रूप से अध्ययन करना चाहिए। दिन भर न कर सको, तो कम से कम एक श्लोक का भी अर्थ समझकर अध्ययन करने से प्रचुर लाभ होगा। अर्थ को न समझकर चन्दन-भारवाही गधे की तरह भार-स्वरूप शास्त्रग्रंथों को वहन करने से कोई लाभ नहीं। "आवृत्तिः सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी" (सभी शास्त्र का अध्ययन उनका बोध (यथार्थ तात्पर्य) जानने से भी श्रेष्ठ हैं) यह कथन साधारणतया परीक्षा में सफलता के लोभी छात्रों के लिए ही है, वास्तविक मनुष्यत्व-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहने वालों के लिए नहीं है। कंठस्थ विद्या कंठ और मुख में ही रहती है, कंठ के नीचे नहीं उतरती, हृदय को भी स्पर्श नहीं करती तथा पच भी नहीं पाती। शास्त्रों के श्लोकों का गूढ़ार्थ समझने के लिए रोज ही थोड़ा-सा समय निकालकर अभ्यास करने से क्रमशः मस्तिष्क का एक ऐसा अभिनव गठन हो जाता है कि गहन तात्पर्य वाले विषयों को भी सहज ही समझने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। शास्त्रकार क्या बताना चाहते हैं, उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया है, उस भाषा के भीतर क्या गहनतर अर्थ निहित है, उसे दूसरों की सहायता लिए बिना ही, अपने आप से प्रयास करके

समझने का अभ्यास करने से स्वाधीन या स्वतंत्र चिंतन विकसित होता है, मस्तिष्क की क्षमता बढ़ती है और अर्थ-ग्रहण के मनोयोग के साथ ही साथ वे सब श्लोक बिना प्रयास के ही स्मृति-पटल पर अपने-आप अंकित हो जाते हैं।

स्वाध्याय में श्रद्धा, मनोयोग और विचार

स्वाध्याय द्वारा एक ही बार में उपदेश को निगल सकने से उसकी सार्थकता नहीं होती। जिस उपदेश विशेष को तुमने प्राप्त किया, वह यदि तुम्हारे जीवन के कर्मों में रूपायित नहीं हुआ, तो वह तुम्हारे लिए व्यर्थ ही हुआ। अतएव, स्वाध्याय के समय चित्त को स्थिर, देह को निश्चंचल और सर्वतोभावेन शुद्ध सत्व और श्रद्धा से युक्त रखना चाहिए। हमेशा स्मरण रखना– "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।" अश्रद्धा से सुना हुआ या पढ़ा हुआ अमृततुल्य जीवनप्रदायक उपदेश भी प्रभावहीन हो जाता है। इसलिए तुम्हारे लिए ग्रहण-योग्य हो या न हो, जो भी अध्ययन करो, उसे स्थिर चित्त से, श्रद्धा सहित करो और तुम्हारे जीवन में इस उपदेश के पालन की आवश्यकता है कि नहीं, यह तुम्हारे जीवन को सत्य और सुन्दर आदर्श गठित करने की उपयोगिता रखता है कि नहीं, यह तुम्हारे जीवन में कितना रूपायित हुआ है तथा इसे और भी कितना रूपायित करना आवश्यक है, इस उपदेश के पालन में तुम्हें क्या-क्या बाधाएं हैं, बाधाओं को दूर करने में तुम कितने प्रयत्नशील हुए हो– इत्यादि का विवेचन करते हुए प्रत्येक श्लोक या वाक्य का पाठ समाप्त करना चाहिए। शास्त्रों में धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय के संबंध में अनेक प्रकार के मत-वैभिन्य हैं, कहीं-कहीं तो एक ही ऋषि विभिन्न स्थलों पर विभिन्न विरोधाभासी

उपदेश प्रदान करते हैं। यह मत-वैभिन्य क्यों हुआ, किस स्थिति में किसने क्या बात कही, तुम्हारे जीवन के निर्दिष्ट आदर्श के सारांश-रूप में किसकी कौन बात हितकर है, इसका विचारपूर्वक अध्ययन करने से अध्ययन ही एक तपस्या बन जाता है और उससे आत्मा की छिपी हुई अनन्त शक्ति अभिव्यक्त होती रहती है। स्मरण रखो कि ऋषियों के मस्तिष्क से उत्पन्न तत्वज्ञानपूर्ण ग्रंथादि या विद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल विविध विषयों की पुस्तकों और यहाँ तक कि समाचार-पत्रादि तक सभी को श्रद्धा, मनोयोग और विचार इन तीनों के समन्वय से ग्रहण करना होगा। तभी "छात्राणाम् अध्ययनं तप:"– यह बात स्वीकार्य हो पाएगी, अन्यथा विद्वत्ता सिद्ध करने के लिए श्लोकों को कंठस्थ करने से और परीक्षा में अधिक अंक पाने के लिए माँ सरस्वती के कंठ में रस्सी बाँधकर उन्हें गले में लटकाकर रखने से ही मैं उसे तपस्या नहीं कहूँगा, अपितु वह बुद्धि-सामर्थ्य का दुरुपयोग मात्र है।

स्वाध्याय की उदारता

स्वाध्याय के सम्बन्ध में यथासम्भव उदार बनने का प्रयास करना। सरल चित्त व्यक्ति के लिए हिन्दू होकर भी कुरान या बाइबिल-पाठ को स्वाध्याय में शामिल करने में द्विविधा का अनुभव करना अनावश्यक है, साथ ही किसी मुसलमान या ईसाई मित्र के गीता आदि ग्रंथ का पाठ करना चाहने पर अथवा उसका मूल संदेश सुनना चाहने पर उसे अबाध अधिकार और सुअवसर देने में कभी संकोच या कुंठा मत रखना। किन्तु एक बात यह भी है कि जिस धर्मावलम्बी माता-पिता के द्वारा तुम्हें जन्म मिला है, जिस धर्मावलम्बी

समाज के माध्यम से तुम्हारी आयु-वृद्धि हुई है, उस धर्म से सम्बन्धित ग्रंथों का पहले अध्ययन किए बिना अन्यान्य धर्म-प्रवर्तकों के उपदेशों को पढ़ने पर सम्भवत: उक्त उपदेशों के सार को तुम ग्रहण नहीं कर सकोगे और तुम्हारी निरपेक्ष विचार-प्रणाली के दूषित होने की भी यथेष्ट सम्भावना बनी रहेगी। इसके परिणामस्वरूप, असत्य और अशान्ति तुम्हें परेशान करेंगे। एक बात और भी है कि तुम्हारे पूर्व जीवन के भीतर जो साधना की परम्परा चली आ रही है, उसका कभी न लुप्त हो सकने वाला एक चिह्न तुम्हारे शरीर और मन पर अंकित हो गया है। इस चिह्न को पकड़कर आगे बढ़ना ही अधिकांश लोगों के लिए स्वाभाविक और कल्याणकारी है। किसी-किसी के लिए पूर्वजों की साधना-परम्परा को पकड़कर चलना अनावश्यक होता है किन्तु वैसे भाग्यशाली, महान शक्तिमान लोग स्वल्पमात्र अवतरित होते हैं। अतएव, तुमने जन्मजात जिस धर्म को प्राप्त किया है, उसके सम्बन्ध में मोटे तौर पर ज्ञान प्राप्त करने के पहले नहीं, बल्कि बाद में ही दूसरे धर्मों से संबंधित ग्रंथों को पढ़ना। इससे यथार्थ धर्म का ज्ञान होने के साथ ही संसार के लोग चिरकाल से जिस वृथा अनुष्ठानगत कट्टरता को संचित करते आए हैं, वह भी टूट जाएगी।

परमत-सहिष्णुता

साधारणतया, धर्म कहने से हम कुछ बाह्य आचार-व्यवहार को ही समझते हैं किन्तु वास्तविक तौर पर धर्म यह नहीं है। जो यथार्थ धर्म है, वह एकमात्र स्वानुभूति-लभ्य है, दूसरे लोग इसको प्रदान नहीं कर सकते या उसका प्रदर्शन नहीं कर सकते। जिन लोगों ने अपने जीवन में धर्म को प्राप्त करके धन्यता प्राप्त की है, वे लोग

धर्म-प्राप्ति का केवल मार्ग प्रदर्शित कर सकते हैं। विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न पथों का अनुसरण करके धर्म को प्राप्त करने के कारण विभिन्न लोगों ने विभिन्न पंथों पर जोर देकर उसका प्रचार किया है– इसी कारण तात्कालिक रूप से धर्म कभी भी भिन्न-भिन्न नहीं होता। धर्म एक, अद्वितीय, शाश्वत, सनातन और विशुद्ध होता है। इस धर्म को प्राप्त करना ही हमारी एकमात्र सार्थकता है– अब इसे जो जैसे प्राप्त करना चाहे, वह करे। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। मैंने जिसे अपने लिए धर्म-प्राप्ति का मार्ग समझ लिया या मान लिया है, उसमें किसी के द्वारा बाधा न देना ही यथेष्ट है। जिन लोगों ने जीवन में धर्म की प्राप्ति या उपलब्धि की थी, उनमें से कौन किस पथ से गया था, उसकी सीमा को ठीक-ठीक निर्देशित करने के लिए ही आचारों-नियमों आदि की एक सीमा-रेखा बना दी गई है। उसके द्वारा हम उनके मार्ग विशेष को समझ सकते हैं। अपने धर्म-पथ का अनुसरण करते हुए भी दूसरों के धर्म-पथ को जानने में कोई दोष नहीं है क्योंकि हम अपने निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए भी दूसरों के पथों के लक्ष्यों के भीतर भी अपने पथ की सूचना या समाचार पा सकते हैं। इसमें कोई आश्चर्य तो नहीं है। हिमालय-भ्रमण करते समय अनेक पर्यटकों ने आस्ट्रेलिया का वृत्तान्त लिखा है और गगनयान द्वारा आकाश-भ्रमण करते हुए अनेक अंतरिक्ष-यात्रियों ने मानो पैदल चलकर पृथ्वी पर भ्रमण का वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। योगशास्त्र में प्रेम की कथा है और भक्तिशास्त्र में भी ज्ञान की बातें हैं। अतएव अपने-अपने पथ को स्पष्टतर रूप से पहचानने के लिए भिन्न मतावलम्बियों के धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन भी लाभदायक है और यह सत्यान्वेषी साधकों के व्रत का पोषक होता है। किन्तु यही दुर्बल मन वाले व्यक्ति

के लिए व्रत-नाशक होता है। अपने धर्म में निष्ठाहीन व्यक्ति के लिए अपने धर्म में निष्ठा-वृद्धि करना ही पहली आवश्यकता है और उसके लिए दूसरे के धर्म का विवेचन विपदाकारक है।

स्वाध्याय का प्रचार

चाहे कोई निम्न जाति का हो, उच्च कुल का हो या तुम्हारे स्वजन-मित्रगण हों, सभी लोग जिससे स्वाध्याय का लाभ प्राप्त कर सकें, इसके लिए पूरी तरह प्रयत्न करना, इससे तुम्हें प्रचुर लाभ मिलेगा। विशुद्ध उपदेश ग्रहण करके प्रत्येक व्यक्ति के सदाचारी स्वभाव वाला होने पर तुम्हारे लिए सत्संग सुलभ होगा और हमेशा सच्चर्चा द्वारा निष्ठा, उत्साह और अभ्यास को अविचल रखने की सहायता प्राप्त होगी। जिस सत्कर्म का तुम स्वयं अभ्यास करते हो, उसका यदि दूसरे दस-बीस लोगों से अभ्यास करा सको, तो तुम देखोगे कि उससे तुम्हारी व्यक्तिगत उन्नति के प्रयत्न में भी कितना अधिक मनोबल और एकाग्रता प्राप्त होगी। फिर यह एक दूसरा सुख है कि तुम स्वयं अभ्यास करके दूसरे से अभ्यास करने को कहते हो, तो लोग सहज ही तुम्हारी बात मान लेंगे और तदनुसार कार्य करेंगे। खोखले भाग की तुलना में आदर्श का मूल्य चिरकाल से ही अधिक है और रहेगा। विश्व के इतिहास में और मेरे-तुम्हारे प्रत्येक के दैनन्दिन जीवन में इसके समर्थन में प्रभूत प्रमाण मिलेंगे। इसलिए इससे सावधान रहो कि जो स्वयं न करो, उसके बारे में स्वजनों-मित्रों से कुछ बताने मत जाओ। ऐसा करने पर वह तो व्यर्थ होगा ही, तुम्हारे भीतर भी एक अनाहूत और पर्वतसदृश बोझिल भाव जाग्रत होकर तुम्हारी उन्नति के समग्र पथ को कंटकाकीर्ण कर देगा। वर्तमान

समाज में पक्षपातपूर्ण या और भी सटीक ढंग से कहें, तो कुत्सित पक्षपातपूर्ण विचार से जो लोग अस्पपृश्य, अन्त्यज और निम्नजातीय हैं, उनमें स्वाध्याय आदि के सात्विक साधनों का प्रसार होते देखकर कुछ लोग जैसे हाथी के आने पर उसके पीछे जैसे कुत्ते भौंकने लगते हैं, वैसे ही अनर्गल प्रलाप करने लगेंगे। फिर कोई अनुष्टुप् छन्द वाले झूठे-सच्चे अनेक श्लोक झाड़ते हुए शूद्र, नारी और म्लेच्छ आदि को वेदादि के अध्ययन क़ो निषिद्ध किए जाने के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करके बारम्बार सिर की चोटी (चुटिया) लहराएंगे अथवा कोई-कोई सनातन धर्म की रक्षा का बहाना बनाकर मुट्ठी-भर लोगों में जो सनातन-व्यवस्था बची है, उसी का पुनर्प्रयोग करना चाहेंगे। किन्तु तुम उन सबकी ओर दृष्टिगत भी मत करना। तुम जिसे सत्य जानना, उसे निर्भीक हृदय से व्यक्त करना और संदेहरहित और निर्द्वन्द्व भाव से उसे क्रियान्वित करना। यदि यह समझ रहे हो कि पैतृक सम्पत्ति की तरह ज्ञान पर किसी का भी एकाधिकार नहीं है, तो नारी-पुरुष का भेद छोड़कर, ब्राह्मण-चांडाल न मानकर, हिन्दू-अहिन्दू का विचार न करके उसे सभी में समान रूप से वितरित कर दो। जो नहीं चाहते, उनमें जबरदस्ती ज्ञान का प्रसार करने की चाह मत रखना किन्तु जो लोग चाहते हैं, वे जिस भी जाति, कुल, स्थिति के क्यों न हों, उन लोगों को भेदभावरहित ढंग से ज्ञान देना होगा। सनातन धर्म की रक्षा के नाम पर असत्य का आश्रय ग्रहण करके कितने दिन चलेगा? मिथ्या ब्राह्मणत्व का बड़प्पन लेकर आज के सम्भ्रान्त लोग अपने उच्च आसन को कितने दिनों तक सुरक्षित रख पाएंगे? नाटकीय अभिनय से सनातन धर्म की रक्षा नहीं होती। सनातन धर्म की रक्षा का प्रमुख उपाय है– उदारता, समानता, सर्वत्र प्रेमभाव और सार्वजनिक

भ्रातृत्व-भाव। इसका अवलम्बन न करके केवल प्रतिवाद करने से वे बातें कौन सुनेगा? और फिर किसलिए सुनेगा? ज्ञान के अबाध विस्तार और साधन के निर्विचार ढंग से प्रसार के विरुद्ध प्रतिवाद कोई आज की नई बात नहीं है।

पहले जैसा चलता आया है, वही चल रहा है, अतीत की दुहाई देकर वर्तमान को जड़भरत के समान मौन और निष्क्रिय करके अब और अधिक तो नहीं रख सकता। एक अपूर्व समन्वय स्थापित करके वर्तमान युग को सर्वथा सुगठित और सुन्दर बनाकर उन्नत करना होगा। इसके लिए विश्व की प्रत्येक सभ्यता से सौन्दर्य को बटोरकर लाना होगा। किन्तु नवयुग की नवीन सभ्यता का मेरुदण्ड या मूलाधार पूरी तरह भारतीय होगा। भारतीय आधारभूमि के ऊपर विश्व के सभी युगों और सभी देशों की, सभी प्रकार की सभ्यताओं की श्रेष्ठ सम्पदा से, श्रेष्ठ शिल्पियों के श्रेष्ठ प्रयास से जगद्धात्री-पूजा का मन्दिर निर्मित होगा। किन्तु यह बात भूलने से काम नहीं चलेगा कि हमें भारतीय मेरुदण्ड या आधारभूमि ही चाहिए किन्तु अतीत के युगों का सभी कुछ जो आज उपयोगी है, वह भी चाहिए।

*

अगर चाहते हो आस्वादन,
तो कर लो कुछ साधन ।
बिना प्रयत्न नहीं मिलता है,
कभी अमूल्य रतन ।।

—श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द

अध्याय बारह

सूर्योदय के पूर्व के कर्तव्य

व्यायाम, प्रात:स्नान और उपासना– इन सभी को सूर्योदय के पहले ही समाप्त करने का प्रयत्न करना। सूर्योदय के बाद व्यायाम से शरीर की थकावट दूर करने में विलम्ब होता है, सूर्योदय के बाद स्नान से वायु-वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप मन उपासना में उतने गहन रूप से एकाग्र नहीं हो पाता। अत: इन तीनों का सूर्योदय के पहले सम्पन्न होना आवश्यक है।

अध्ययन और स्वास्थ्य

सूर्योदय के साथ ही स्वाध्याय और इसके उपरान्त विद्यालय के अध्ययन आदि को आरम्भ करना सुसंगत है तथा अधिक काल बीतने के पूर्व ही उसे समाप्त करना आवश्यक है। अधिक समय बीतने पर यह मस्तिष्क के परिश्रम, मस्तिष्क के सामर्थ्य की वृद्धि और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह बात ध्यान रखनी चाहिए। विद्यालय में अन्य अच्छे बालकों के साथ प्रतियोगिता में अधिक अंक पाने की जिद में पड़कर कभी भी मस्तिष्क के ऊपर अत्याचार मत करना। जीवन-गठन के समय यदि कक्षा में स्थान पाने के मोह से मस्तिष्क को दुर्बल करोगे, तो बाद में पछताना पड़ेगा। जिन लोगों ने बाल्यकाल, किशोरावस्था और यौवन में मस्तिष्क को अविकृत और स्वस्थ रखकर कार्य किया, प्रौढ़ावस्था और वार्धक्य में उन लोगों की मेधा-मनीषा इस तरह प्रस्फुटित हुई कि संसार अवाक् होकर आदरपूर्वक

उनकी ओर देखता रह गया। ब्रिटेन आदि देशों में बालक और युवक पढ़ाई के लिए कभी भी अभिभावक के द्वारा प्रताड़ित नहीं होते। अभिभावक लोग दिन-रात केवल यही सोचते हैं कि कैसे बालकों का स्वास्थ्य अच्छा रहे, देह सबल रहे, मांसपेशियाँ लौहवत् सुदृढ़ रहें, वक्षस्थल विस्तृत हो तथा अतुलनीय साहसभाव विकसित हो। किन्तु हमारे देश में ठीक इसके विपरीत होता है। जिस विद्या को अर्जित करने से गुलामी करने के अलावा अन्य किसी भी काम की योग्यता नहीं उत्पन्न होती, हमारे देश में माता-पिता ठीक उसी बात के लिए बच्चों के स्वास्थ्य, आयु, सुख, शक्ति और यहाँ तक कि इस लोक और परलोक के सुखों की बलि देने में संकोच नहीं करते। अतएव, इस सम्बन्ध में तुम लोगों को ही थोड़ा सजग रहना पड़ेगा। हमेशा ध्यान रखो कि अन्त भला, तो सब भला। आज परीक्षा में दो अंक अधिक पाने की तुलना में जीवन के वास्तविक संग्राम-क्षेत्र में विजयी वीर व्यक्ति होने का मूल्य लाखों गुना अधिक है। हमारे देश में कभी कभार दिखने वाले दस-बीस लोगों के अलावा अन्य सभी मेधावी लोग चालीस-पचास की आयु के पहले ही जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। अब यूरोप, अमेरिका की ओर देखो– उनके देश में मेधावी लोग कोई अस्सी-नब्बे, तो कोई-कोई सौ वर्ष तक देश और विश्व की सेवा में, अपने जीवन को सार्थक करते रहते हैं। केवल यही नहीं, पाश्चात्य देशों के अधिकांश मनीषी व्यक्ति बाल्यावस्था और युवावस्था में नितान्त सामान्य-बुद्धि के लोग ही रहे हैं। स्वास्थ्य की उन्नति करने के लिए प्राणपण प्रयत्न द्वारा वे लोग अपनी शक्ति को अतिवादिता (ज्यादती) और अपव्यय से बचाकर अन्ततः अल्प पूँजी के बल पर ही उच्च स्तर की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके हैं।

अध्ययन और नाश्ता (स्वल्पाहार)

उपासना के बाद कुछ स्वल्पाहार किए बिना अध्ययन का आरम्भ मत करना। क्षुधापीड़ित अवस्था में मस्तिष्क का श्रम करना और स्वेच्छया मृत्यु का आह्वान करना एक बात है। स्वल्पाहार के बारे में परिस्थिति के अनुसार प्रबन्ध करना। कंगाल देश के कंगाल विद्यार्थी को भोजन-सामग्री की सुदीर्घ तालिका देना हृदयहीनता का ही परिचायक होगा। स्वल्पाहार के कुछ समय पूर्व शरीर की हालत के अनुसार अदरक-सेंधा नमक, पटसन या पटुआ के पत्तों में भिगोया हुआ जल, चिरैता का जल, त्रिफला, हरड़, ब्राह्मी शाक का रस आदि नियमित रूप से सेवन करना हितकारी है। रोज एक गिलास शीतल जल के साथ एक या दो कागज़ी नींबू का रस मिलाकर प्रात:काल सेवन करने से मलेरियाग्रस्त छात्रों को विशेष लाभ होगा। काँटानट पौधे की जड़ उखाड़कर उसमें चौथाई भाग कालीमिर्च और आठवाँ भाग सेंधा नमक मिलाकर तथा उसे पीसकर १/१६ या एक आना मात्रा की गोलियाँ बनाकर नित्य प्रात: एक गोली चिरैता के जल के साथ सेवन करने से शरीरस्थ मलेरिया का असर क्रमश: कम हो जाने की बात बहुत प्रसिद्ध है।

अध्ययन और आसन

हमेशा किसी एक सुखप्रद आसन में बैठकर अध्ययन करना। टेंढ़े-मेंढ़े होकर बैठने से मन सुस्थिर नहीं होता और एक बार की जगह दस बार पढ़ना पड़ता है। पढ़ने के समय या यह कहें कि सभी कार्य करते समय यह याद रखो कि जो दूसरे एक घंटे में कर सकते हैं, उसे तुम्हें दस मिनट में करना चाहिए। इस प्रकार का

आग्रह रखकर कार्य करने का प्रयास करने पर छः मास में ही देखोगे कि सभी कार्य तुम दूसरों की अपेक्षा बहुत पहले ही समाप्त कर सकते हो। संसार में योग्यता का ही समादर होता है। संग्राम-क्षेत्र में विजयलक्ष्मी योग्य व्यक्ति की गोद में विश्राम करती हैं।

मेरुदण्ड को सीधा रखने की आवश्यकता

पढ़ने बैठो, ध्यान में बैठो, भोजन करने बैठो या दस-पाँच लोगों के साथ बातचीत करने बैठो; जब भी बैठो, मेरुदण्ड सीधा करके बैठो। सर्वप्रथम यह थोड़ा कष्टकर लग सकता है किन्तु एक मास के अभ्यास के बाद ही इसकी उपयोगिता समझ सकोगे। मेरुदंड सीधा रहने से मेरुदंड के बीच में स्थित मज्जास्रोत स्वाभाविक रूप से संचरित होकर शरीर को शक्तिशाली बनाता है। फेफड़ों की क्रियाओं में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने के कारण हृदय का कार्य निर्बाध ढंग से चलता है। विशेषतया, मेरुदंड सीधा करके बैठने का अभ्यास करने से काम-दमन आसान हो जाता है।

घर की स्वच्छता

अध्ययन, व्यायाम, शयन और भोजन का कक्ष हमेशा अच्छी तरह से स्वच्छ रखना और जिससे वहाँ हवा के आने-जाने की व्यवस्था सहज हो, ऐसा ध्यान रखना। अध्ययन-कक्ष में देश के प्रसिद्ध विद्वानों के चित्र लगाकर रखना किन्तु जिन विद्वानों के नैतिक चरित्र कलुषित रहे हों, उनके चित्र बिलकुल मत लगाना। व्यायाम कक्ष में राममूर्ति, गामा आदि पहलवानों के चित्र को लगाकर रखना। शयन-कक्ष में परोपकारार्थ आत्मत्याग करने वाले, सभी के कल्याण

में तत्पर, ब्रह्मचर्यव्रत-सिद्ध तथा ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले महापुरुषों के चित्र रखना और पुष्प-मालादि द्वारा उनकी पूजा करना। इसे मूर्ति-पूजा कहकर लोग निन्दा कर सकते हैं– किन्तु इसकी परवाह मत करना। देश से वीर-पूजा के लुप्त हो जाने के कारण ही आज हम नपुंसकों, कायरों की तरह होकर रह गए हैं। जिन लोगों ने धर्म की शक्ति से सशक्त बनकर विश्व के संकट का मोचन किया है, उनकी पूजा अवश्य ही करनी होगी। दूसरे लोग अगर बाधा दें, तो देते रहें। भोजन-कक्ष में भी समुचित चित्रों को लगाकर रखना अच्छा है। किन्तु ऐसे लोगों के चित्र रखना, जो अल्पाहारी रहे हों किन्तु विश्व-कल्याण के अनेक कार्य कर चुके हों, उदाहरणस्वरूप, महात्मा गांधी को ले सकते हैं।

अध्ययन-कक्ष में कागज के टुकड़ों पर बड़े अक्षरों में ये सब श्रेष्ठ वचन लिखकर रखना–

"विद्यार्थं विद्यार्थी स्यात् ।"

"विद्ययामृतमश्नुते ।"

व्यायाम-कक्ष में ऐसा लिखना–

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।"

शयन-कक्ष में ऐसा लिखकर रखना–

"और कितनी देर रहोगे, निद्रा से अचेतन ।
जीवन तो व्यर्थ गया, नहीं हुआ साधन ।।"

भोजन-कक्ष में ऐसा लिखकर रखना–

"जिस आहार ने, नहीं किया वीर्य-वर्धन ।
उसे कौन भोजन कहे?– वह है मल का भक्षण ।।"

महान वचनों की सार्थकता

सम्भवतः तुम लोगों का शयन, व्यायाम और अध्ययन एक ही कक्ष में होता होगा। अतएव, उपर्युक्त चित्रों और बातों को एक ही कक्ष में लगाकर रखो। बीच-बीच में एक चित्र या वचन की ओर ध्यान एकाग्र करके देखना और संबंधित व्यक्ति के जीवन की महानता के सम्बन्ध में अथवा लिखित वचन के अर्थ के संबंध में मन ही मन विचार करना। यदि ऐसा नहीं करते हो, तो बैठक-घर से लेकर शौचालय तक सभी स्थानों को भी यदि महापुरुषों के चित्रों और महावचनों से सजाकर रखो, तो भी उससे कोई लाभ नहीं होगा।

इस प्रसंग में एक बात अवश्य ही कह देना आवश्यक है कि पूजा या उपासना-गृह में अनेक मूर्तियों, प्रतीकों या अनेक वचनों को मत रखना।

अध्ययन और मस्तिष्क का श्रम

अध्ययन के समय कभी भी मस्तिष्क में थकावट का अनुभव होने पर भगवान के नाम-गुणगान में लग जाओ। मस्तिष्क की थकावट दूर न होने तक किसी भी हालत में पुनः अध्ययन मत शुरू करो। अध्ययन करके पूर्वाह्न नौ बजे तक दोपहर का स्नान पूरा कर लेना। कई लोगों के लिए प्रातःस्नान के बाद दोपहर का स्नान आवश्यक नहीं रहता, उन्हें कम से कम सिर को अच्छी तरह धो लेना उचित होगा, अन्यथा वायु-वृद्धि हो सकती है।

स्नान

स्नान के समय जल का प्रयोग करने के पूर्व विश्व-स्रष्टा

परमात्मा को प्रणाम करके निवेदन करना– "हे परमात्मन् ! तुम्हारी महिमा से जल रूप जीवन मेरे लिए ही सृजित हुआ है, तुम्हें सहस्रों प्रणाम।" तदुपरान्त सिर पर एक लोटा जल डालकर धीरे-धीरे अवगाहन या स्नान करना। सिर पर जल नहीं डालकर जल में अवगाहन या स्नान करने से रक्त ऊर्ध्वगामी होकर विविध प्रकार के वायु-रोगों को उत्पन्न करता है, इसलिए इस बारे में हमेशा सजग रहना।

स्नान करते समय मन ही मन सोचना–"जल की प्रत्येक बूँद के स्पर्श से मेरे शरीर की थकावट, श्रम और अवसाद दूर होकर देह में नवीन बल और नवोत्साह का संचार हो रहा है, श्रम से उत्तेजित रक्तकण सुशीतल जल के स्पर्श से शान्त, स्निग्ध और सुखद हो रहे हैं, मस्तिष्क के स्नायु स्वस्थ और सबल हो रहे हैं। मन की सभी प्रकार की मलिनता और गंदगी इस जल से धुल जा रही है, रोग-शोक, पाप-ताप और आन्तरिक जलन चिरकाल के लिए मेरा त्याग कर रहे हैं और मैं नित्यशुद्ध निर्मल होकर अपार शान्ति का अधिकारी और जगत्कल्याण हेतु अधिकतर क्षमतावान् हो रहा हूँ।"

पहले दो-चार दिन यह सब बच्चों के खेल जैसा ही लगेगा, किन्तु बाद में देखोगे कि इस प्रकार स्नान के द्वारा देह और मन की प्रसन्नता, प्रशान्ति और उन्नत अवस्था अब किस तरह नित्यप्राय वर्धित होती रहती है। केवल इतना नहीं, अभ्यास के द्वारा तुम्हारे भीतर ऐसी क्षमता उत्पन्न होगी कि मरुस्थल की प्रतप्त बालुकाराशि या अत्यधिक गर्म वायु-प्रवाह के बीच भी यदि शान्त होकर कल्पना मात्र के जल से स्नान करते हो, तो सूर्य की शक्ति भी तुम्हारी क्षमता के सम्मुख निष्फल होगी।

दोपहर-उपासना

दोपहर-स्नान के बाद भी उपासना करना। उद्वेगपूर्ण कर्ममय जीवन-यापन करने वालों के लिए, विशेषत: आधुनिक छात्रों के लिए दोपहर-उपासना करने में अनेक बाधाएँ हैं, तथापि उत्साहहीन होना ठीक नहीं है। दो मिनट ही हो सके, तब भी उपासना अवश्य ही करना। अन्य कार्यों में व्यस्तता के कारण अधिक समय तक उपासना नहीं कर सकने पर भी नियम-रक्षा का एक स्थायी सुपरिणाम मिलता है क्योंकि यह स्वभाव और रुचि में एक स्थायी संस्कार सृजित करता है।

आहार

दोपहर-उपासना के पश्चात् मुख आदि का प्रक्षालन करके भोजन करने बैठना। जब भी जिस वस्तु का आहार करो, उसके पूर्व और बाद में ठीक ढंग से आचमन करो। अपवित्र स्थान में, अपवित्र आसन पर और घृणित आहार को मत ग्रहण करना। अप्रसन्न, उद्विग्न और काम-क्रोधादि से विचलित मन से कभी भी भोजन मत करना। भोजन के समय वाणी-संयम का अभ्यास करना। बिलकुल मौन धारण करके रह पाना उत्तम है, अन्यथा अत्यावश्यक होने पर अपनी बात संक्षेप में कहकर समाप्त करना।

भोजन-काल का चिन्तन

यह कभी मत भूलना कि भोजन करते समय जिस तरह का चिन्तन करोगे या बातें करोगे, ठीक उसी तरह भोज्यसामग्री तुम्हारे शरीर का गठन करेगी। भोजन के समय व्यर्थ गपशप करने से

भोज्यसामग्री अतीव निष्क्रिय ढंग से देह का गठन करती है, काम-चिन्तन या कामुक-प्रसंग की चर्चा करने से वह शरीर को सहज ही काम-लुब्ध और काम-प्रवण बना देता है। भोजन करते समय क्रोधित होने पर या क्रुद्ध व्यक्ति के सम्बन्ध में चर्चा करने से, यहाँ तक कि उसका चिन्तन करने से भी देह क्रमशः सूक्ष्म प्रभाव से क्रोध के भण्डारगृह के रूप में परिणत हो जाता है। अतएव, सावधान! जैसे-तैसे हँस-खेलकर, जो लोग जीवन को किसी भी तरह आहार, निद्रा और मैथुन की सेवा में ही व्यतीत कर पाने पर कृतकृत्यता का अनुभव करते हैं, ऐसे लोगों की संख्या तुम मत बढ़ाना। हमेशा अपनी स्मृति में जागरूक रहो कि तुम्हें जगत् के परम कल्याण में महान आहुति देनी होगी, तुम्हें अन्य लोगों से पृथक् साधना-व्रती होना होगा, इसलिए तुम्हारे कर्मों में भी विशिष्टता रहेगी। भोजन करते समय चौदहों भुवनों के समाचारों की चर्चा करना, व्यक्तिगत दोषों का प्रचार और श्रवण करना, परनिन्दा, शिकायत को प्रश्रय देना वर्तमान नपुंसकता का एक प्रत्यक्ष स्वभाव हो गया है। तुम लोग इस नपुंसकता से दूर रहना। भूख के साथ असत्य का संयोग मत करना, भोजन के साथ विनाश की खेती को मत समृद्ध करना।

भोजन के प्रत्येक ग्रास को ग्रहण करते समय इस प्रकार चिन्तन करना चाहिए–

"यह अन्न निश्चित रूप से अति सहज, स्वाभाविक रूप से पचकर, सर्वदोषरहित विशुद्ध रस में परिणत होगा और उससे शुद्ध रक्त, रक्त से सुपुष्ट मांस, मांस से उत्तम चर्बी, चर्बी से सुदृढ़ अस्थि, अस्थि से प्रगाढ़ मज्जा तथा मज्जा से गाढ़ा, पवित्र, दिव्यगंधयुक्त, स्निग्ध, स्वच्छ और उज्ज्वल दूध के रंग वाला वीर्य उत्पन्न होगा। इस

भोजन से उत्पन्न प्रत्येक बूंद शुक्र (वीर्य) मुझे दीर्घायु, अधिकतम मेधावी, अधिकतम उत्साही, अधिकतम कर्मठ और अधिकतम संयमी बनाए। संयमशक्ति की सहायता से अधिकतम वीर्य-रक्षण द्वारा बलवान होकर मैं अनायास ही विश्व-विजय में सक्षम बनूँगा।''

भोजन के समय इस चिन्तन को छोड़कर किसी अन्य चिन्तन को मन के समीप भी मत आने देना। रक्त, रस, चर्बी, मज्जा आदि विशेषणों की ओर विशेष ध्यान रखना।

आहार–निवेदन

उपास्य देवता को भक्तिभावपूर्वक भोजन को निवेदित करके उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करना। जिस खाद्यवस्तु पर भगवान के नाम का उच्चारण नहीं हुआ हो, उसे अखाद्य समझना। पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने कहा है–''जो व्यक्ति कृतज्ञता के साथ भोजन करता है, वह उपवास व्रत (रोज़ा) रखने वाले संयमी लोगों के तुल्य है।'' (हासिद तरमोजी)

आहार-योग्य चीजें

सुपाच्य, प्रिय, स्निग्ध, धातुपोषक, मन को प्रसन्न रखने वाली खाद्य-वस्तुओं को ही ग्रहण करना। जिस भोजन से रोग नहीं होता है, अपितु नीरोगता आती है, वायु नहीं बढ़ती है, जिस परिमाण में भोजन करने से शरीर सभी तरह की हानियों से दूर रहता है तथा सभी तरह से कार्यक्षम रहता है, जिससे मन का सत्वगुण और इंद्रियों की कार्यक्षमता बढ़ती है, वैसा निर्मल और सुखद भोज्य ही सेवन करना चाहिए।

आहार की मात्रा

"अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन च तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेत् वायुचालने ।।"

भूख की मात्रा का चार भाग करके, दो भाग क़ो अन्न-व्यंजनादि से, एक भाग को जल और दुग्धादि तरल द्रव्यों द्वारा भरना चाहिए तथा एक चौथाई भाग को वायु-संचारण के लिए खाली रखना चाहिए अर्थात् हमेशा भोजन की इच्छा या थोड़ी भूख रहते ही भोजन समाप्त कर लेना चाहिए। भोज्य-पदार्थ कितना ही स्वादिष्ट और रसपूर्ण क्यों न हो, जब तुम जीवन-धारण करने के लिए खा रहे हो, तो संसार के प्रति अपने कर्तव्यों को सर्वोपरि रखकर, भोजन को गौण प्रयोजन-रूप मानकर चलना चाहिए। 'खाऊँगा, खाऊँगा' करके सिर खराब मत करना।

निषिद्ध खाद्य, एकादशी, पूर्णिमा

ब्रह्मचारी के लिए कौन-कौन से खाद्य शास्त्रानुमोदित हैं, उसे किसी हिन्दू विधवा के आहार-नियम को देखकर समझ सकोगे। उन सभी विधि-निषेधों को मानकर चलना उचित है। किन्तु जिनके लिए ऐसा सम्भव नहीं है, उनको सुविधा और स्वास्थ्य के अनुरूप ही व्यवस्था करनी होगी तथा उनके लिए भी मन के अनुकूल आहार की ओर विशेष ध्यान देना उचित है। मन का बल ही महान बल है, मन का बल संचित होने पर कोई भी भोजन मानसिक चंचलता नहीं ला सकता। कंगाली के कारण जिन लोगों को प्राय: रोज ही लाचारीवश एकादशी-व्रत करना पड़ता है, उन लोगों को एकादशी, अमावस्या पूर्णिमा आदि के दिन उपवास करने हेतु मैं बारम्बार मना करता हूँ।

किन्तु जो लोग राजा की स्थिति में नहीं हैं और नित्य सामान्य पौष्टिक भोजन ही भरपेट खाते हैं, वे एकादशी आदि को कुसंस्कार मानकर उसकी उपेक्षा न करें या उसे तुच्छ न समझें। सात्विक खाद्य-पदार्थों को ग्रहण करने से और एकादशी, पूर्णिमा आदि का उपवास करने से मानसिक संयम में सहायता मिलती है, इस बारे में रंचमात्र भी संदेह नहीं है। दूध या घृत के अभाव में जो लोग मांस-मछली नहीं छोड़ सकते हैं, उन लोगों को भी कभी प्याज, लहसुन, मादक-द्रव्यादि, अत्यधिक मिर्च आदि तिक्त चीजें तथा अत्यधिक अम्लकारक, शुष्क, तीक्ष्ण चीजें और अतिरिक्त नमक नहीं खाना चाहिए। बासी, शुष्क, सड़े-गले, दुर्गन्धपूर्ण और उच्छिष्ट (जूठी) चीजें हर हालत में निषिद्ध हैं।

आहार की समयनिष्ठा

नित्य निर्दिष्ट समय पर आहार और अल्पाहार करना चाहिए। उपासना और व्यायाम की तरह भोजन में भी इसी बात पर ध्यान देना आवश्यक है।

*

"सोकर उठने पर किन्हें स्मरण करोगे? शय्या पर विश्राम-निद्रा के समय सब भार किनको दोगे? दिन भर के कर्मों के दौरान किनको अपना बल समझोगे? महान संकट आने पर किनका आश्रय ग्रहण करोगे? समस्त मेधा, मनीषा-बुद्धि के द्वारा उनके चरणों में अपने को समर्पित कर दो। दिन-रात, अनुदिन, प्रतिपल उनके नाम में मन-प्राण निमग्न कर दो।"

— श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द

(साधन-पथ पर : पृष्ठ १००)

अध्याय तेरह

स्वपाक-भोजन

स्वपाक-भोजन का प्रयत्न प्रशंसनीय है क्योंकि स्वपाक भोजन से स्वावलम्बन बढ़ता है और अशुद्धि के संस्पर्श से उत्पन्न सैकड़ों प्रकार की बीमारियों के आक्रमण से बचा जा सकता है। किन्तु सावधान! यह स्वपाक-भोजन कहीं बारह राजपूतों हेतु तेरह हांड़ियों की व्यवस्था करके न बैठ जाए अर्थात् विधि-विधान से भोजन करना ही उद्देश्य न हो जाय। स्वपाक-भोजन की एक आध्यात्मिक मर्यादा है किन्तु उसके साथ जातिभेद का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बात देशवासियों की स्मृति से लुप्त हो जाने के कारण ही स्वपाक एक आचार मात्र रह गया है और धर्मान्ध स्वपाक-भोजी लोग कामक्रोधादि षड्रिपुओं को वश में नहीं करके, आध्यात्मिक उन्नति का गौरव-गांन करके मर रहे हैं। स्वपाक-भोजन का यथार्थ तात्पर्य जानने पर तथाकथित स्वपाक-भोजी लोग जान-बूझकर परम परितृप्ति के साथ गाय-सुअर-सर्पादि के चर्बी-मिश्रित घृत, नकली दूध और जिलेटिन-मिश्रित शहद का सेवन नहीं करते।

मनुष्य जन्म की दुर्लभता

अनेक योनियों में भटकने के बाद यह दुर्लभ मानव जन्म मिला है। हँस-खेलकर, कल्पना या विलास के उत्साह में तथा विषयों के भोगविलास में समय बिता देने की तरह यह तुच्छ या नगण्य विषय नहीं है। फिर जीवन क्षणभंगुर है, अभी है, अभी नहीं है; कब

इसका हमेशा के लिए अवसान हो जाएगा, कब यह दीपक की लौ (दीपशिखा) के समान तेज हवा के झोंके से बुझ जाएगा, इसे कौन जानता है? दुर्लभ होने के कारण ही इस मनुष्य जीवन में ही श्रीभगवान को प्राप्त करना होगा और क्षणस्थायी होने के कारण अभी उन्हें सच्चे भाव से पुकार लेना होगा। मानो मेरी सभी इन्द्रियाँ उनके स्पर्श हेतु व्याकुल हो उठी हैं, नेत्र उनका रूप देखना चाहते हैं, कान उनकी मधुर कथा सुनना चाहते हैं, नासिका उनके श्रीअंग-कमलों के पराग-सुरभि को पाना चाहती हैं, जिह्वा उनकी समग्र मधुरता का आस्वादन पाना चाहती है, सभी अंग उनके सभी अंगों का स्पर्श पाना चाहते हैं और मन केवल उनमें ही रमण करना चाहता है। जीवन तो क्षणभंगुर है, इसीलिए मैं अभी उन्हें चाहता हूँ, मुझे संतोष नहीं होता, मन में धैर्य नहीं है, विश्राम का समय नहीं बचा है तथा विलास की सामर्थ्य नहीं है। अपने आत्मीय जन को हमेशा के लिए पाने हेतु मेरा मन व्याकुल हो उठा है, वे भोगी की पुकार को सुनना नहीं चाहते और मोहग्रस्त के आह्वान से विचलित होना उन्हें अच्छा नहीं लगता। मैं अभी ही उन्हें पाना चाहता हूँ। किन्तु उन्हें पाऊँ कहाँ? क्या कोई बता सकता है कि उन्हें कहाँ पाऊँगा, कैसे पाऊँगा?

दुर्लभ मानव जीवन की ऐसी दुर्लभ व्याकुलता जब क्रन्दन करके यह बात जानने को उत्सुक हुई, तभी वेद-ब्रह्म हृदय के भीतर जाग उठे–उज्ज्वल आलोक की किरणों से अन्धकार में मार्ग प्रकाशित हुआ, हताशा के हाहाकार के बीच भरोसा और आशा-विश्वास का पुंज कमल के समान दसों दिशाओं में प्रफुल्लित और प्रस्फुटित हो उठा। साधक ने जान लिया कि जीवन की प्रत्येक श्वास-प्रश्वास ही श्री भगवान के श्रीअंगों का सुखद स्पर्श है। मेरी चेष्टा, मेरे परिश्रम, मेरे

उल्लास, मेरे आनन्द– सबके ही भीतर उन्हीं एकमात्र वांछित जीवनधन का ही स्नेहिल, कोमल और मधुर स्पर्श है।

आहार का अर्थ है–श्रीभगवान की सेवा

उसी दिन से साधक ने जान लिया कि मेरा आहार तो वास्तविक रूप में मेरा ही आहार नहीं है। यह तो श्रीभगवान के श्रीअंगों की ही सेवा है, मेरा यह अनुष्ठान उन्हीं की प्रसन्नता के लिए ही तो है, उनके ही प्रीत्यर्थ तो समर्पित है मेरा यह जीवन और यौवन! मेरा यह शरीर चले जाने से कोई दुख नहीं, मन के विनष्ट होने से शिकायत की कोई व्यथा-वेदना नहीं क्योंकि यह देह-मन उनके ही प्रिय कार्य के साधन में समर्पित करके मैं धन्य से भी धन्यतर हुआ हूँ। यह देह उन्हीं के लिए रखूँगा और यह देह उन्हीं के लिए छोड़ूँगा। मेरे शरीर को पुष्ट रखने का यह प्रयास, मेरी यह आहार-प्रचेष्टा– सब कुछ मुख्यत: उन्हीं की सेवा के लिए है– मेरे लिए नहीं है, मेरे सुख, मेरे भोग, मेरी प्रसन्नता के लिए नहीं है, बिलकुल ही नहीं है, कभी भी नहीं है। उनकी प्रसन्नता से मेरी प्रसन्नता स्वत: उत्पन्न हो जाएगी, मैं उनके प्रति भी लुब्ध नहीं हूँ, मैं चाहता हूँ, उनका प्रेम, उनकी प्रसन्नता, उनकी तृप्ति; उनकी तृप्ति में ही मेरी चरितार्थता है, धन्यता है, मैं और कुछ भी नहीं चाहता।

स्वपाक-भोजन का आध्यात्मिक तात्पर्य

किन्तु भगवान की पूजा के भार को क्या कोई भक्त किसी मासिक-वेतनभोगी पुजारी के हाथ में देकर निश्चिन्त रह सकता है? क्या प्रियतम की पदसेवा का भार कोई साध्वी नारी किसी दासी के

हाथ में सौंपकर सुखी रह सकती है? इसीलिए भक्त ने स्वपाक-भोजन तैयार किया, वात्सल्य भाव के भक्त ने अपने हृदयस्थ प्रिय गोपाल को अपने हाथों से पकाकर भोजन कराया, माधुर्य भाव के भक्त ने हृदय रूपी वृन्दावन में विचरण करने वाले श्रीनन्द-नन्दन की पद-सेवा अपने हाथों से की।

यही इसका तात्पर्य है। इसीलिए सभी खाद्य-सामग्री तुम्हें पवित्र भाव से जुटाकर उसे पकाकर परिवेशन करना होगा, प्रसन्न मन से, संयत वाणी से, प्राण-देवता का प्रसाद समझकर, श्रद्धापूर्ण हृदय से, संतोष के साथ इसे ग्रहण करना होगा। भोजन रसना-परितृप्ति मात्र नहीं है। यह प्रथमत: देव-सेवा है और द्वितीयत:, देवता का प्रसाद-ग्रहण है।

स्वपाक-भोजन का लाभ

यह तो हुई आध्यात्मिक तात्पर्य की बात। इसके अतिरिक्त स्वपाक से और भी कई लाभ होते हैं। स्वपाक से स्वास्थ्य बेहतर होता है, जिससे स्वच्छता और शुद्धता बनी रहती है, दूसरों के टायफायड, क्षयरोग, आमाशय आदि के कीटाणु आहार के साथ मिश्रित होकर उसे दूषित नहीं कर सकते और भोजन में अधिक मिलावट और झंझट नहीं होती है।

सबसे बड़ा लाभ यह है कि स्वपाक से स्वावलम्बन की शिक्षा मिलती है, संयम का अभ्यास हो जाता है और व्यक्ति-स्वातंत्र्य सुरक्षित रहता है।

*

अध्याय चौदह

अन्न की शुद्धता

अनुचित उपाय से अर्जित अन्न का भोजन करने से साधु में भी असाधु का भाव संक्रमित होता है, अतएव यथासंभव दूसरे का अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। कोई व्यक्ति किस भाव से धन अर्जित कर रहा है, क्या तुम उसे जानते हो? पाप के द्वारा, अन्याय के द्वारा या नीति-धर्म द्वारा निन्दित उपायों द्वारा अर्जित और संचित धन से जो सब चीजें खरीदी जाती हैं, उन्हें भी पाप-स्वरूप समझना। स्वयं पाप न करके भी पापाचरण द्वारा प्राप्त धन द्वारा अपने शरीर की पुष्टि में सहमत होने पर, वास्तविक रूप में पाप के प्रति सहमति ही प्रकटित होती है।

हमारा हमेशा यही प्रयास रहना चाहिए कि हम सतत कपटरहित प्रयत्न से एकमात्र सत्यस्वरूप की ही उपासना कर सकें। सभी प्रकार की चतुराई, कुचक्र से दूर रहकर, सब तरह के छल-कपट-धोखे से परे रहकर, सर्वतोभावेन पुण्यमयी प्रतिभा से समुज्ज्वल, सुन्दर, सत्य रूप से हम अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहें। जीवन की किसी भी आकांक्षा या आचरण में ऊपर सोने से मँढ़ी हुई कोई धातु आकर हमारे असली सोने की जगह पर अधिकार न कर सके। इसीलिए हम लोगों को हमेशा सावधान रहना होगा कि आतिथ्य, निमंत्रण-ग्रहण, या मित्रता की रक्षा के माध्यम से हम पाप-प्रवृत्तियों की सूक्ष्म उत्तेजनाओं को कहीं ग्रहण न कर बैठें।

मूल्य के द्वारा वस्तु या पदार्थ विशुद्ध बनता है। यदि अपने

धर्मानुमोदित परिश्रम के मूल्य द्वारा पापी व्यक्ति का भी अन्न या धन ग्रहण करते हो, तो उससे तुमको किसी भी दोष का स्पर्श नहीं होगा क्योंकि पापी व्यक्ति चाहे जिस भी भाव से धन ग्रहण करे, तुम उसके अनुजीवी बनकर उसके पाप में परोक्ष सहमति नहीं देते हो। उसके द्वारा यदि किसी भी धर्मसंगत कार्य का अनुष्ठान होता है, तो उसके लिए परिश्रम करके उसके बदले में अन्न या धन ग्रहण करने से तुम्हारे परिश्रम के मूल्य से ही वह शुद्ध हो जाएगा। जब तक वह धन उसका था, तब तक वह पापपूर्ण था, किन्तु ज्योंही उस अधर्म-विहीन परिश्रम-रूप मूल्य को ग्रहण करके उसने तुमको दिया, त्योंही वह अन्न या धन पापमुक्त हो गया और उसका पाप उसका ही आश्रय करके रह गया क्योंकि उसने तुम्हें धन या अन्न ही बेंचा है, पाप नहीं बेचा है।

अभिक्षा-व्रत

सत्य की साधना में अग्रसर होने पर पहला कदम रखने के साथ ही तुम यह समझ सकोगे कि अभिक्षा-व्रत को ग्रहण किए बिना सिद्धि-प्राप्ति असम्भव है। सभी की सहायता से निरपेक्ष रहकर, भिक्षावृत्ति से विमुख रहकर, सम्यक् रूप से आत्मावलम्बी नहीं होने पर परोक्ष रूप से समग्र प्रत्यक्ष जीवन असत्य से आच्छन्न हो जाएगा और अन्ततः ठगे हुए मूर्ख बनकर आर्तनाद करना होगा। इसीलिए हम लोगों को शिथिल प्रयत्न छोड़कर नैष्ठिक साधना में व्रती होना होगा। जीवन से असत्य को दूर रखकर सर्वतोभावेन, शुद्धसत्व और अपापविद्ध (विशुद्ध) रहने हेतु आप्राण प्रयत्न को स्वीकार करना होगा। भूख से पीड़ित देह को असत्य से उपार्जित और दूसरों द्वारा प्रदत्त आहार से बचाकर रखने के छोटे से छोटे प्रलोभन को अभिक्षा-

व्रत रूपी हिमालय के प्रचण्ड दबाव द्वारा बिलकुल चकनाचूर करके फेंक देना होगा।

तुम यह पूछोगे कि फिर तो अनजान जगह पर जाकर बिना खाए मर जाऊँ? मेरा उत्तर बिलकुल सीधा है। मरना ही उचित है और मरते-मरते ही तुम लोग जीवित रहना सीखोगे। मुहल्ले और आस-पड़ोस से प्रारम्भ करके देश-विदेश के लोगों के समक्ष तुम लोग भिक्षा-वृत्ति की ज्वलंत प्रतिमूर्ति-स्वरूप खड़े होते हो। तुम लोगों का चेहरा देखकर लोग मुख से कोई बात न सुनकर भी तुम लोगों को अनायास ही भिक्षुक समझ लेते हैं। तुम लोगों की इस जातिगत भिक्षावृत्ति ने देह में, मन में, सर्वत्र संक्रमित होकर तुम लोगों को पशु से भी अधम बना रखा है। तुम लोग दूसरों के तलवों को चाटने से बड़ा कोई धर्म नहीं जानते, दूसरों को प्रसन्न रखने से श्रेष्ठ कर्म नहीं सीखते, अहंकारी-दम्भी, मिथ्या कुलीनता का गर्व करने वाले की कंचन-तुल्य कुलीनता की चापलूसी करने को ही परम पुरुषार्थ समझकर, अनुदिन पुरुषत्व को खोकर हीन और नपुंसक हो रहे हो। तुम लोगों का अभ्युत्थान-मंत्र है– वही 'अभिक्षा'। जो लोग आत्म-सम्मान नहीं सीख पाने के कारण ही सभी तरह के असम्मान के पात्र हुए हैं, आत्मस्थ होने से प्रेम न कर पाने के कारण ही अस्वास्थ्य और अवसाद से पीड़ित हुए हैं, अपनी महिमा का अनुसंधान नहीं कर पाने के कारण ही विदेशी-चकाचौंधयुक्त मोहमयी सभ्यता के मदमाते नेत्र बन गए हैं, जो लोग घर के देवता को छोड़कर दूसरे के कुत्ते को गोद में लेकर दुख-दुर्दशा की चरमावस्था पर पहुँच गए हैं, उन लोगों के लिए यह निश्चित जान लो कि यह 'अभिक्षा' ही एकमात्र कल्याणकारी मार्ग है। अभिक्षा भयभीत को त्रिभुवन-विजयी बनाएगी,

कायर को अतुलनीय साहसी बनाएगी, आत्म-विस्मृत को महत्वाकांक्षी बनाएगी। संकीर्णता के कारागार में आबद्ध आत्मा को आकाशवत् उन्मुक्त और उदार बनाएगी।

जैसे व्यक्तिगत छोटे-छोटे आचरणों में, वैसे ही राष्ट्रव्यापी विशाल आंदोलन में भी, अभिक्षा ही सर्वाधिक कार्यक्षम और सामर्थ्यवर्धक है। यह जैसे पौरुष को उद्दीप्त करती है, वैसे ही पौरुष बढ़ाती भी है। यह जैसे मनुष्यत्व को प्रमाणित करती है, वैसे ही मनुष्यत्व को प्रकट करने का उपाय भी करती है। जिस चाभी को खोकर बुद्धिभ्रष्ट शत-कोटि मनुष्य पागल होकर कैदखाने का दरवाजा नहीं खोल पाते हैं, अभिक्षा उसी की चाभी है।

खान-पान ग्रहण करने हेतु प्रतिदान

हे भाई! तुम लोगों को मेरा यही कठोर आदेश है कि कभी भी किसी से दया की प्रार्थना मत करना, किसी भी तरह किसी का ऋणी होना स्वीकार मत करना, बिना प्रतिदान किसी से भी किसी वस्तु की आकांक्षा भी मत करना, ग्रहण करना तो दूर की बात है। जगत्-कल्याणमूलक विशेष प्रयोजन के बिना किसी का भी अन्न ग्रहण मत करना और जब भी किसी का अन्न ग्रहण करने की जरूरत पड़े, तभी से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विविध प्रकार से उसका उपकार करने को प्रयत्नशील रहना। जिस व्यक्ति ने इस जीवन में तुम्हें एक गिलास पेयजल दिया है, मृत्युकाल तक उसका हित-चिन्तन करने की बात को मत भूलना।

*

अध्याय पन्द्रह

भोजन के समय जल पीना

भोजन करते समय बारम्बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा में जल पीना। भोजन के समय अधिक जल पीने से अथवा बिलकुल ही नहीं पीने से भोजन पचने में बाधा उत्पन्न होती है। भोर में और रात में शयन से पूर्व जल पीने से देह-मन में संतुलन स्थापित होता है और सतोगुण बढ़ता है। जो जल गंदला, अस्वच्छ, शैवाल-कीचड़ आदि से पंकिल, रसहीन तथा सूर्य और चन्द्रकिरण द्वारा स्पर्शरहित हो, उसे स्नान और पीने में उपयोग नहीं करना चाहिए। जो जल गंधहीन, अव्यक्त-रसान्वित, निर्मल, स्वच्छ और हृदयग्राही हो, उसका ही उपयोग करना चाहिए। दूषित जल को गर्म लोहा डुबाकर, आग पर उबालकर, धूप में गर्म करके, फिटकिरी, कपूर आदि मिलाकर अथवा बालू या दहकते हुए कोयले आदि द्वारा फिल्टर करके, जिस परिस्थिति में जिस उपाय का अवलम्बन स्वास्थ्यवर्धक हो, वैसा ही करके शुद्ध बना लेना चाहिए।

दुग्धपान

नित्यप्राय थोड़ा दूध पीने का प्रयास करना। दुग्धनिर्मित किसी भी खाद्य का सेवन शरीर के लिए अत्यावश्यक है। जो लोग दुग्ध या दुग्धनिर्मित किसी भी खाद्य को जुटा नहीं सकते हैं, उनको विवेक या धर्म-संस्कार की बाधा न होने पर सीमित मात्रा में सहज और स्वच्छ मांस-मछली के सेवन के बारे में उत्तम चिकित्सक के निर्देशानुसार चलना अच्छा है। किन्तु दुग्ध और घृत की तुलना में

मांस-मछली अत्यंत हीन गुण वाले हैं। काले रंग वाली गाय का दूध ही श्रेष्ठ गुणकारी है। जो गाय या बकरी विष्ठा आदि खाती है या जिसे यक्ष्मा आदि की असाध्य व्याधि है, जो गाय बहुत दुर्बल है और जिसका दूध उसके बछड़े के पोषण से अधिक नहीं होता, उसका दुग्ध अखाद्य और अपेय है। जो दूध रसहीन, विवर्ण, (खराब रंग का) अम्लीय स्वाद का, दुर्गन्धयुक्त या जमा हुआ होता है और जिसमें नमक मिला हो, उसका सेवन करने से कुष्ठ रोग होता है। दुर्बल पाचन या निष्ठावान लोग दूध के साथ कभी भी मुड़ी (लाई) नहीं खाएंगे क्योंकि मुड़ी भूनने में नमक का प्रयोग होता है।

दूध सभी स्थितियों में, सभी आयु-वर्ग में और हमेशा शरीर के लिए परम कल्याणकारी है। बचपन में सेवन करने से यह शरीर की वृद्धि करता है, क्षय की अवस्था में सेवन करने से वीर्य बढ़ाता है। प्रात:काल सेवन से वीर्य-वृद्धि, देह-पुष्टि और भूख को बढ़ाता है, दोपहर में सेवन से बलवृद्धि, कफ-नाश, पित्त-निवारण तथा क्षुधा-वृद्धि करता है तथा रात में सेवन से अनेक कष्टों का निवारण और नेत्रों को लाभ होता है। दिन के समय जो सब अन्न-जल ग्रहण किया गया, उनकी गर्मी को शान्त करने के लिए रोज रात में दुग्धपान अधिकांश लोगों के लिए विशेष आवश्यक है। किन्तु रात में दुग्धपान करने से कुछ लोगों को परेशानी भी हो जाती है, इसलिए इस बारे में व्यक्तिगत अनुभव और सामर्थ्य को समझकर चलना चाहिए।

दधि-भोजन

रात में दही नहीं खाना चाहिए। यदि खाना ही हो, तो उसमें जल, घृत, चीनी, मूंग का पानी (रस), शहद, कालीमिर्च या आंवला चूर्ण मिलाकर खाना। हेमन्त, शीत और वर्षा ऋतु में दही खाना उत्तम

है तथा शरत्, ग्रीष्म और वसन्त ऋतु में अस्वास्थ्यकर है। दूध में गुड़ मिलाकर खाने से अधिक लाभप्रद होता है। ताजा दही दीर्घायुवर्धक खाद्य पदार्थों में श्रेष्ठ है।

भोजन के बाद हस्त-लेहन (हाथ चाटना)

हजरत मुहम्मद ने भोजन के बाद जीभ से हाथ चाटने की बड़ी प्रशंसा की है। मुझे भी इसकी प्रशंसा करने की इच्छा होती है। लगता है, अरब देश के धर्म-प्रवर्तक ने अरब की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही हस्त-लेहन का निर्देश दिया है। किन्तु मेरी प्रशंसा का कारण दूसरा है। नित्य भोजन के बाद हस्त-लेहन करने से उससे जीभ का नियमित व्यायाम होने के कारण जीभ सबल और सक्रिय बनती है। इसका विशेष लाभ यह है कि क्रमशः जीभ सबल बनती जाती है और उससे अनजाने ही इन्द्रिय-संयम में विशेष मदद मिलती रहती है। फिर यदि योगशास्त्रानुमोदित जिह्वा सम्बन्धी कौशल का अभ्यास किया जाए, तो कुछ कहना ही नहीं है।

भोजन के समय श्वास-प्रश्वास

पिंगला नाड़ी से अर्थात् दाहिनी नासिका-छिद्र से श्वास लेते समय भोजन या स्वल्पाहार करना चाहिए। भोजन के समय इड़ा नाड़ी से अर्थात् बाएँ नासिका-छिद्र से श्वास लेने से, वाम उदर-भाग को बाएँ नासिका-छिद्र से श्वास लेने से, वाम उदर-भाग को बाएँ घुटने द्वारा दबाकर बैठने से अथवा बाईं करवट सोने से श्वास परिवर्तित होकर दाहिने नासिका-छिद्र से बहने लगेगी। कुछ काल तक ब्रह्मचर्य-साधन द्वारा वीर्य-धारण तथा मनःसंयम द्वारा संयत चित्त होने पर इच्छा मात्र से, अनायास ही, बाहरी क्रिया के बिना, केवल मन की शक्ति से ही श्वासवायु परिवर्तित हो सकती है। इसमें

विशेष संकेत यही है कि जिस नासिका से श्वास लेना है, उसी से अपने शरीर का चिन्तन करते हुए इष्टमंत्र का जप करना होता है।

जल-पान और मूत्रत्याग के समय श्वास-प्रश्वास

मल-त्याग के समय दाहिने नासिका-छिद्र से तथा जल पीते और पेशाब करते समय बाएँ नासिका-छिद्र से श्वास लेना चाहिए। किन्तु मल-त्याग के समय जो मूत्र-त्याग होता है अथवा भोजन के समय जो थोड़ा-थोड़ा जल पिया जाता है, उसमें इस नियम का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। उस समय आहार और मल-त्याग के नियमाधीन होकर श्वास-प्रश्वास लेना चाहिए।

उपासना के समय श्वास-प्रश्वास

दोनों नासिका-रंध्रों से श्वास-प्रश्वास लेने का समय ही उपासना का श्रेष्ठ समय है तथा उपासना में चित्त स्थिर होने पर अपने-आप दोनों नासिका-पुटों से श्वास चलने लगता है। उपासना के समय नाम-जप श्वास-प्रश्वास के साथ करना चाहिए, यह श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक रूप से चलेगी, उसे बलप्रयोग करके लघु या दीर्घ नहीं करना चाहिए।

इन सब नियमों को धर्मान्धजनोचित कुसंस्कार समझकर इनका पालन करने में शिथिलता मत बरतना। पाश्चात्य मनीषियों की प्रतिभा अभी तक प्राण-तत्व के प्रारंभिक छोर तक भी नहीं पहुँच सकी है। वे लोग यहाँ तक जान गए है कि गहरी सांस लेने से शरीर को प्रभूत लाभ होता रहता है किन्तु इसके अलावा कुछ नहीं जानते। फिर श्वास-प्रश्वास के साथ आध्यात्मिक साधना का और सार्वभौमिक कल्याण-साधन का कोई अज्ञात सूक्ष्म सम्बन्ध है, इसका पता सूक्ष्मदर्शी यंत्रों से अभी तक नहीं चल सका है और निकट भविष्य

में इसका पता चल पाएगा, इसकी भी किसी तरह की कोई सूचना नहीं है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने स्थूलेन्द्रियों से परे या बाहर एक सूक्ष्म साधना-क्रम आविष्कृत किया था, जिसकी निर्भ्रान्तता और अकाट्यता एकमात्र साधना की कसौटी पर ही प्रमाणित होती है, तर्क-विचार से यह सिद्ध या प्रमाणित नहीं होती। इस श्वास-प्रश्वास की नियमावली में उन्हीं सूक्ष्म नियमों के सारतत्व रखे गए हैं। इनकी उपेक्षा करने की जरूरत नहीं है।

श्वास-प्रश्वास में दैहिक लक्षणों के संकेत

इस प्रसंग में एक और आवश्यक बात बता देता हूँ। दाहिने नासिका-पुट से अधिक समय तक श्वास चलने से जानना चाहिए कि स्नान, नेत्र-प्रक्षालन, सिर-प्रक्षालन, शीतल खाद्य-पेय पदार्थों के ग्रहण आदि के द्वारा शरीर को स्निग्ध रखने का प्रयास करने की जरूरत है। बाएँ नासिका-पुट से अधिक समय तक श्वास चलने पर समझना चाहिए कि कुछ समय तक गर्म क्षेत्र में रहने की आवश्यकता है। अधिक विस्तार में न जाकर, केवल इन दो संकेत-सूत्रों को पकड़कर चलने से प्राय: सभी तरह के रोगों को प्रतिवारित करना सम्भव है।

मुखशुद्धि

भोजन के बाद शुद्ध जल से मुख को खूब अच्छी तरह धोना चाहिए। इसके पश्चात् हरीतकी (हरड़), आँवला आदि के द्वारा मुखशुद्धि करनी चाहिए। ताम्बूल (पान) का सेवन मत करना, वह आंशिक रूप से काम-वर्धक है। सौंफ और अजवायन आंशिक रूप से शुक्रक्षय कारक हैं, अतएव उदर-पीड़ा नहीं रहने पर साधारणतया इनके द्वारा मुखशुद्धि नहीं करनी चाहिए।

भोजन के उपरान्त

भोजनोपरान्त कम से कम आधा घंटा विश्राम करना चाहिए। पैरों को पीछे की तरफ मोड़कर उसके ऊपर कुछ देर (वज्रासन में) बैठना हितकारी है। भोजन के बाद की थकावट और दुर्बलता के पूरी तरह दूर हुए बिना कोई भी दैहिक या मानसिक श्रम नहीं करना चाहिए। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से अभी तुम लोगों को भोजन के तुरन्त बाद ही हाँफते हुए विद्यालय की ओर दौड़े बिना काम नहीं चलता है। अतएव, भोजनादि थोड़ा सबेरे (जल्दी से) समाप्त करने की जंजीर को तोड़ सको, अथवा जगत्कल्याणकारी महापुरुषों के प्रयत्नों से गाँव-गाँव में ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित हो सके, तभी इस राष्ट्र-विध्वंसकारक तथा दुर्गतिकारक कुप्रथा के उच्छेद का उपाय सम्भव है।

*

"जगत् में तुम लोग ही धन्य हो जिनका जीवन और यौवन, धन और सम्पत्ति, सामर्थ्य और समग्र आयु सभी कुछ जगत् के कल्याण के लिए हैं।"

—श्री श्री स्वामी स्वरूपानन्द

(साधन-पथ पर : ४१)

अध्याय सोलह

ब्रह्मचर्यमूलक संस्थाओं की अवश्यम्भाविता

यदि आज मैं यथेष्ट रूप से परिचालित ब्रह्मचर्य-विद्यालयों को उपयुक्त संख्या में स्थापित कर पाता, तो इसी समय अंग्रेजी-पद्धति के स्कूलों-कालेजों का मूलोच्छेदन करके, भारत की अपनी मानवता के उन्मेष का उपाय करने वाली वैसी पौरुष-प्रसारिणी शौर्य-वीर्यशाली, मनुष्यत्व-महिमाशालिनी तथा पूर्णता की धात्री स्वरूपिणी सुशिक्षा की सुव्यवस्था कर देता जिससे परानुग्रह-लोलुप, पशुभावापन्न मनुष्य के नाम पर कलंक-स्वरूप भारतवासी अपने पूर्व के सभी कलुष-कालिमा को धोकर शुभ्र, शुद्ध और सुन्दर हो सकते। किन्तु देश के जागने के प्रतीक रूप में भेरी-निनाद होने पर भी देशवासियों के प्राणों में सचमुच ही जागरण नहीं आया है। एक-एक आन्दोलन से देशवासी एक-एक बार घोर तन्द्रा-आलस्य को छोड़कर आँखें मलते हुए उठकर बैठ जाते हैं और फिर क्षण भर बाद ही मोह-शय्या पर लुढ़क जाते हैं। इसीलिए आज भी देशव्यापी ब्रह्मचर्य-शिक्षा के उपयोगी विद्यालयों के निर्माण का प्रयास पूरी तरह सफल नहीं हो पा रहा है। किन्तु यदि हम लोगों में एकनिष्ठता रहे और विश्व-कल्याण हेतु आत्मकल्याण को निस्संकोच बलि देने का मनोबल रहे, तो सहायता और सम्बल से हीन होने पर भी हम लोग अनुदिन सफलता की ओर अग्रसर होते रहेंगे। निश्चय ही इस शुभ प्रयास में हम लोग सैकड़ों प्रकार के बाधाओं-विघ्नों द्वारा आक्रान्त होंगे किन्तु यदि हम देश को प्रेम करते रहें, तो अन्ततः हम अवश्य ही युद्ध में विजयी होंगे। यदि हम चित्तहीन (मनोबलहीन) न हों, तो वित्तहीन होने पर भी

पराजित नहीं होंगे। सफलता कभी भी मेरुदण्डविहीन वचन-कौशल का अनुसरण नहीं करती। सशक्त हाथों के कठोर कर्मों से बिलकुल नीरवता से गुजरते हुए ही सफलता आती है। सचमुच हम लोग जिस दिन देश की आन्तरिक कामना के अनुरूप यथेष्ट संस्थाओं का निर्माण कर सकेंगे, उस दिन पलक झपकते ही विदेशी शिक्षा के मन्दिर-शिखर भूकम्प से ध्वस्त भवनों की तरह अपने आप ढह जाएंगे अथवा पाश्चात्य-शिक्षा संस्थानों के साथ खुली प्रतियोगिता में ब्रह्मचर्यमूलक संस्थान अपना गौरवपूर्ण संचालन करके देश और राष्ट्र की सेवा करेंगे।

अपने देश में प्रचलित पाश्चात्य शिक्षा की अपूर्णता

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति में यथेष्ट गुण हैं किन्तु पाश्चात्यों की जो साधना उनमें मनुष्यत्व का एक आभास प्रदान करती है, वह इस देश में प्रचलित शिक्षा में रंचमात्र भी प्रतिफलित नहीं होती है अपितु सभ्यता के नाम पर पाश्चात्यों ने जो पैशाचिक तांडव या दानवी लीला की है और कर रहे हैं, उसे ही हम लोग मोहमुग्ध नेत्रों से रात्रि के उपरान्त होने वाला सूर्योदय मानकर उसकी ओर देख रहे हैं तथा पाश्चात्यों की कलुषित कालिमा पोतकर या उससे लिप्त होकर हम लोग पाश्चात्य साधना का गौरव-गान करते हैं। बात यह नहीं है कि इससे केवल हमारी ही दुर्गति हो रही है, यहाँ तक कि पाश्चात्य-देशवासी स्वयं सार्वजनिक रूप से अपनी यथार्थ साधना से परिचित नहीं हैं। अमावस्या की रात में विद्युत् की चमक की तरह एक-एक महर्षि आकर पाश्चात्यों को उनकी सभ्यता का स्वरूप और कुरूपता दिखाते हुए उनकी साधना की सार बात को समझाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु वह व्यापक रूप से उपलब्ध ही नहीं हो

पाता। शारीरिक शक्ति का बखान करके पाश्चात्यों ने वक्षस्थल के प्रसार को बढ़ाया है, मांसपेशियों को मजबूत किया है किन्तु वक्षस्थल के भीतर जो कोमल हृदय विश्व-मानवता का अनुभव करता है, खोपड़ी के भीतर जो मस्तिष्क सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मतत्व की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करता है, उसका गठन पाश्चात्यों द्वारा उस ढंग से नहीं किया जा सका। यदि ऐसा होता, तो पाश्चात्य लोग राक्षसी भूख से अधीर होकर अन्य राष्ट्रों को पैरों से कुचलने का प्रयास नहीं करते, असहाय नर-नारियों के ऊपर बर्बर-सदृश अकथ्य अत्याचार नहीं करते। रोगियों, शिशुओं और वार्धक्य-पीड़ितों पर अस्त्र-प्रहार नहीं कर सकते, बम, बन्दूक, गोला-बारूद, डायनामाइट से आज खून की नदियाँ नहीं बहाते। तुच्छ स्वार्थ के वशीभूत होकर पाश्चात्य सभ्यता पर गर्व करने वाले लोग राष्ट्र के रूप में जिस तरह अन्याय और मूर्खता का कार्य करते हैं, वह उनकी किसी भी मानवोचित साधना के अस्तित्व तक के सम्बन्ध में प्रबल संशय उत्पन्न कर देता है।

पाश्चात्य राष्ट्रों की आदर्श-भ्रष्टता

फिर भी पाश्चात्य लोगों की एक साधना है। हममें से प्रत्येक जैसे सतत योगाभ्यास करके भी यह नहीं जान पाते कि हम योगी हैं, वैसे ही पाश्चात्य में लोगों ने अनजाने ही एक साधना विकसित कर ली है किन्तु वे लोग उससे अवगत नहीं रहते। वे लोग जिसे अपनी साधना समझते रहते हैं और लोगों के समान दास्यभावाच्छन्न, थके-हारे और अपने मूल स्रोत से विमुख राष्ट्रों को साधना के रूप में स्मरण कराते रहते हैं, वह उन लोगों की साधना नहीं है, वह दूसरों का सर्वस्व अपहरण करने वाले की छुरी की धार को तीक्ष्ण करना मात्र है। वे लोग जिस-जिस राष्ट्र के साथ मिलकर, सार्वभौमिक मैत्री

की दुहाई देकर संगठन-निर्माण करते हैं, वह पाश्चात्य मनीषियों के ही मतानुसार दुर्बल के ऊपर आक्रमणकारी दस्युओं के सुनियोजित आक्रमण का गुप्त षड्यंत्र मात्र है। ये सब राष्ट्रों के संघ केवल स्वार्थ के आधार पर निर्मित होते हैं, इसके साथ किसी के भी हृदय का रंचमात्र सहयोग नहीं है– यह पाश्चात्य मनीषियों का सिद्धान्त है। जिस दिन उन लोगों का हार्दिक सहयोग हो जाएगा– भगवान करें, आज ही ऐसा हो जाए– उस दिन पाश्चात्यों का उद्धत अस्त्र लुढ़ककर भूतल पर गिर पड़ेगा और शत्रुता को भूलकर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के आलिंगन-पाश में बँध जाएंगे। पाश्चात्य लोगों के हृदय और मस्तिष्क का गठन उपयुक्त ढंग से नहीं होने के कारण ही वे लोग यह समझ नहीं पा रहे हैं कि अस्त्रों की टंकार के द्वारा कभी भी युद्धों का चिर-अवसान नहीं होगा, हो नहीं सकता। एकमात्र हृदय के द्वारा ही, एक के बाद एक राष्ट्र पर विजय करनी होगी, हृदय के द्वारा ही विश्व संघ का गठन करना होगा।

साधना की पूर्णता के समय प्राच्य-पाश्चात्य में भेद नहीं

पाश्चात्यों ने अपनी मेधा-मनीषा को कल-कारखानों का गुलाम बनाकर रखा है जिसके परिणामस्वरूप गोला-बारूद के ढेर के दबाव से उनका हृदय चपटा हो गया है। पाश्चात्य लोगों द्वारा छल या बल से एक राष्ट्र के बाद दूसरे राष्ट्र को पराधीनता की जंजीर में बाँधने में समर्थ होने के कारण हम लोग उन्हें ईश्वर या आराध्य देवता समझकर, उन्हीं की देखा-देखी कल-कारखानों के कोलाहल को ही सभ्यता की ऊँकार-ध्वनि समझने का भ्रम करते हैं। पाश्चात्यों की अव्यवस्थित सामाजिक स्थिति और उच्छृंखलता को हम स्वाधीनता का चरमोत्कर्ष मानकर बैठ गए हैं और अपने दैनन्दिन जीवन में

उसकी नकल करते-करते हर कदम पर नकली हो जाते हैं। आज पाश्चात्य आत्मविस्मृत है, हम भी आत्मविस्मृत हैं। पाश्चात्य लोग अपना आत्म स्वरूप प्रस्फुटित और विकसित नहीं कर पा रहे हैं और हम अन्धता के कारण अपना प्रस्फुटित आत्मस्वरूप देख नहीं पा रहे हैं। जिस दिन पाश्चात्य लोग अपने स्वरूप को जाग्रत करेंगे और हम लोग अपना स्वरूप देख पाएंगे, उस दिन पाश्चात्य के साथ प्राच्य का पार्थक्य या अन्तर नहीं रहेगा। हम लोग जिस तरह ब्राह्मण-चांडाल का अंतर भूल जाएंगे, उसी तरह पाश्चात्य लोग श्वेत-अश्वेत का भेद भूल जाएंगे। तभी पाश्चात्य को प्राच्य के हृदय में और प्राच्य को पाश्चात्य के हृदय में प्रतिष्ठित करना सम्भव होगा क्योंकि साधना की पूर्णता के समय सचमुच ही दृष्टिगत होगा कि प्राच्य और पाश्चात्य में कोई भेद नहीं है।

भारत को आत्मस्थ होना होगा

आज जब पाश्चात्य लोग धन-मद, जन-मद, बल-मद में अंधे हो गए हैं, तब वे हम लोगों को मार्ग नहीं दिखा सकते; ऐसी योग्यता का दावा उनके लिए अनधिकार चर्चा है और उन लोगों को सही दृष्टिकोण वाला प्रमाणित करने का प्रयास हम लोगों के लिए मिथ्या चेष्टा मात्र है। आज हम लोगों को अपनी अंधता स्वयं ही दूर कर लेनी होगी। पाश्चात्यों के मुख की ओर देखते रहने से कल्याण नहीं होगा, अर्थात् इससे सर्वांगीण पक्षाघात के ऊपर सर्वांगीण सर्पाघात ही हमारा नसीब बन जाएगा। अतएव, यदि आज मरण के द्वार से लौटकर जीवन के मंदिर में जाना चाहते हो, तो आत्मस्थ हो जाओ, अपने को पहचानना सीखो, आत्म-विश्वास के आलोक में मार्ग को ठीक से देख लो।

*

अध्याय सत्रह

चित्तशुद्धि

भगवान से विमुख होकर या भगवान को दूर हटाकर जो शिक्षा-पद्धति चल रही है, उसके दुष्परिणाम के जाज्वल्यमान दृष्टांत तुम लोग ही हो। किन्तु इसके बिना जब तक नहीं चल पा रहे हो, तब तक इस सर्वनाशी शिक्षा को ही स्वीकार करके चलना होगा, यही समझता हूँ। तथापि यह भी जान लो कि इच्छा रहने पर उपाय होता है और संकल्प की दृढ़ता रहने पर इस शिक्षा को जीवन में अस्वीकार कर सकते हो। तुम्हें करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए, इस बारे में मैं कुछ भी परामर्श नहीं दूँगा। तुम अपनी अन्तरात्मा के निकट पूछना, वही तुम्हें यथासमय यथोचित उपदेश देकर तुम्हें परिचालित करेगी। अथवा एक बात और बताता हूँ कि यदि संकल्प की दृढ़ता रहे, तो इस शिक्षा को स्वीकार करने के बावजूद जीवन में धर्म की साधना और भागवती चेतना को सुप्रतिष्ठित कर सकते हो। यह सामर्थ्य तुम्हारे हाथ में है।

किन्तु इस बारे में कुछ करो या न करो, सर्वदा सभी प्रकार के प्रयत्न करके कुसंग से बचकर चलना चाहिए।

''यदि उन्हें लाओगे पुकारकर,
तो क्या तुम्हारे पास है आसन ऐसा।
उन्हें बिठाओगे आत्मीय जैसा ।।
तेरा मलिन हृदय-आसन देखकर वे,

चले जाएंगे अपने भवन ।
फिर कैसे पाओगे रे?
उनको जो अमूल्य रतन ।।"
– (सतीश चन्द्र)

जो लोग भगवान को चाहते हैं अथवा जो लोग भगवान की विचित्र लीला के माध्यम से आत्म-विकास ही देखना चाहते हैं, उन लोगों को चित्तशुद्धि की जरूरत है। पवित्रता की अग्नि में सभी प्रकार के पापपूर्ण चिन्तनों, पाप-प्रवृत्तियों, कलुषित कामनाओं और उच्छृंखल आवेगों के भस्मीभूत नहीं होने पर भगवान को तो पाया ही नहीं जा सकता, यहाँ तक कि तुच्छ सांसारिक कल्याणसमूह भी बहुत दूर खिसक जाते हैं। भगवान अपने घर में ही आते हैं, दूसरे के घर में नहीं आते। जिस घर में भगवान के लिए सतत दीपक-ज्योति जलती रहती है, मांगलिक शंख बजते हैं, सतत सज्जा से सज्जित पुष्पांजलि समर्पित होती है, प्रेम के धूप-चंदन की असीम सुगन्ध से दसों दिशाएँ सुरक्षित होती हैं, जहाँ आलोक के साथ पुलकित भाव जाग उठता है, वहीं पृथ्वी लोक पर गोलोक (वैकुंठ) उतर आता है और श्रीभगवान अधम चंडाल के हृदय में भी अपना भवन निर्मित करा लेते हैं। वे सभी जीवों के प्रति समदर्शी हैं, इसीलिए कभी भी जाति-भेद करके भक्तों को धोखा नहीं देते, जिसका जैसा भाव होता है, वे वैसे ही उसके अपने हो जाते हैं। ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर सामाजिक प्रथानुसार मोटा जनेऊ धारण करने का अधिकार प्राप्त कर लेने के कारण ही वे किसी से भी अधिक या अनुचित पक्षपात नहीं करते। जिसका जितना भाव होता है, उसे वे उसी मात्रा में लाभान्वित

करते हैं या फल देते हैं। तिलक-चंदन लगाने से भी नहीं, गैरिक वस्त्र धारण करने से भी नहीं। सिर के बल उलटकर या कलाबाजी करके सैकड़ों तीर्थों में भ्रमण करने से भी नहीं, अपितु केवल चित्तशुद्धि करने से ही वे अपने परम आत्मीय और प्राणों के भी प्राणसर्वस्व हो जाते हैं।

अत: बाह्य अनुष्ठानों की अपेक्षा न करके, दिखावटी साधुता के ढोंग से यथासम्भव दूर रहकर, एकमात्र भाव की गहराई की साधना का प्रयास करने से, वही प्रयास सार्थकता-मंडित होता है। वह भाव-बीज उन्होंने निश्चित ही दिया है और देते हैं, मन की सुविस्तृत भूमि उन्होंने तुम्हारे ही जिम्मे छोड़ रखी है। अब तुम जैसी खेती करोगे, वैसी ही फसल काटोगे। तुम्हारी अपनी अवज्ञा-उपेक्षा और विरुद्ध भाव या बुद्धि के दोष से तुमने इस भूमि को वनाच्छादित कर रखा है। इसे साफ नहीं करने से फसल काटने की बात तो दूर रही, हल कैसे चलेगा। बुद्धि की अस्थिरता से समतल भूमि के ऊपर तुम दस जगहों पर व्यर्थ में ही दस गड्ढे खोदते हो, फिर तो तुम्हें लापरवाही के कारण उन्हीं गड्ढों में गिरकर मरना होगा और तुम उसकी तो कोई चिन्ता भी नहीं करते। हाथ में पौष्टिक और नीरोग अनाज के प्रचुर बीज रहने पर भी तुम केवल बेंत और कँटीले पौधों के बीज ही बोते हो, अब तो इन सब कँटीले पौधों को समूल उखाड़ फेंकने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है।

कुसंग-त्याग

कुसंगी लोगों ने ही तुम्हें बेंत और कँटीले पौधों के बीज लाकर दिये थे और जब तक तुम उन लोगों को दुत्कार कर दस कोस

दूर नहीं भगा सकोगे, तब तक वे और भी बीज देते रहेंगे। इसीलिए तुम्हें कुसंग का त्याग करना होगा। जिन लोगों के संसर्ग द्वारा तुम लोगों के हाथ से तुम्हारा सौभाग्य छीन लिया गया है, जिनकी संगति-दोष से तुम राजा के पुत्र होकर भी आत्मविस्मृति के कारण स्वयं को दीन से भी अधिक दीन-हीन मानकर तुच्छ समझते हो, स्तूपाकार गुप्त धनराशि के अधिकारी होकर भी जिन लोगों के उकसाने पर तुम मुट्ठी-भर धूल अर्जित करने के लिए जीवन की श्रेय सम्पदा स्वरूप ब्रह्मचर्य को नष्ट करते रहे हो। उन लोगों की छाया के स्पर्श तक को हिंसक पशुओं के संसर्ग के समान दुखद जानकर त्याग करना होगा।

कुसंगी कौन है?

किन्तु केवल मनुष्य को कुसंगी समझना यथेष्ट नहीं होगा। तुम्हारे द्वारा किए गए कर्म, मुख से निकले वचन तथा तुम्हारे अपने मन के चिन्तन-विचार भी यदि कभी तुम्हारे वास्तविक चिरकल्याण के विरोधी हों, तो उनको भी कुसंगी के रूप में जानना। तुम्हारे कुछ मित्र मित्रता बढ़ाकर तुम्हारे परम शत्रु के रूप में कार्य करते हैं तथा और भी अन्य कितने ही मित्र ऐसा करने की सुविधा-सुअवसर ढूँढ़ते रहते हैं, इसलिए ये लोग तुम्हारे लिए वर्जनीय हैं। अंग्रेजी में जिसे 'बॉयकाट' (बहिष्कार) कहा जाता है, केवल वही बहिष्कार करने से काम नहीं चलेगा, इन सबका मन-वचन-कर्म से परित्याग करना होगा। इन सबके साथ भौतिक रूप से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रखने से ही उनका व्यावहारिक या लौकिक त्याग होगा, यही सच्चा 'बॉयकाट' (बहिष्कार) है। इन सबके अच्छे-बुरे, गुण-दोषों आदि की कोई चर्चा न करने का नाम ही वाचिक त्याग है। इन सबने

तुम्हें कुशिक्षा दिया, तो दिया। इसके लिए इन सबकी निन्दा करने मात्र से तुम्हारा चरित्र-गठन नहीं होगा। विलुप्त मनुष्यत्व को प्राप्त करने के लिए मनुष्योचित श्रेष्ठ गुणों का साधन करना होगा। निन्दा द्वारा चित्तवृत्तियों का अपकर्ष ही होता है क्योंकि निन्दित व्यक्ति का चिन्तन न करके क्या उसकी निन्दा सम्भव हो सकती है? उसकी निन्दा करके हम लोग बारम्बार उसकी ही बातों का चिन्तन करते रहते हैं और भले ही हम उसके प्रति विरुद्ध-चिन्तन का पोषण करते हैं, तो भी हम वास्तविक तौर पर उसे अपने मन में अधिक समय तक जीवन्त बनाकर रखते हैं। रावण ने राजा श्रीरामचन्द्र को शत्रु के भाव से देखकर तीन जन्मों में मुक्ति पा ली थी और सच्चे भक्तों ने अनुराग के भाव से देखकर सात जन्मों में मुक्ति पाई थी– यह कथा तो तुमने सुनी है न? सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्परा की दृष्टि से इसे न समझकर यदि इसे भाव की दृष्टि से समझने का प्रयत्न करो, तो अनायास ही इसका सार-मर्म हृदयंगम कर सकोगे। जब मेरा चित्त भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानेगा या चिन्तन करेगा, तभी मेरी मुक्ति होगी। रावण श्रीरामचन्द्र के प्रति इतना द्वेषी हो गया था कि श्रीरामचन्द्र के अलावा वह अन्य किसी का भी चिन्तन नहीं करता था। राम की पराजय कैसे होगी, कैसे उन्हें मारा जाए– एक इसी बात के अलावा रावण अन्य सभी बातें भूल गया और उसका चित्त अपने शत्रु के प्रति इतना तन्मय हो गया कि परम भक्त के लिए जो सात जन्मों से कम में सम्भव नहीं हुआ, वह रावण के लिए तीन जन्मों में ही सम्भव हो गया। यह कहानी सत्य हो या मिथ्या हो– इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु इसमें जो एक मूल बात मिलती है, वह निर्भ्रान्त है। मूल बात यही है कि

जैसे पारे की बूँद स्वर्ण-खंड के ऊपर पड़ते ही वह स्वर्ण के प्रत्येक कण को अपने रासायनिक प्रभाव से आवेष्टित कर लेती है, वैसे ही बिन्दु-मात्र (रंचमात्र) विद्वेष-भाव भी विद्वेष-भाजन व्यक्ति को अपने चंगुल में जकड़ लेता है। जैसे सोने से पारे को निकालकर अलग नहीं किया जा सकता है, वैसे ही विद्वेष से विद्वेष-भाजन व्यक्ति को अलग नहीं किया जा सकता है। किन्तु विद्वेष तो मेरे मन का ही एक रूप है। अतएव विद्वेष करके मैंने तो अपने मन को विद्वेष के पात्र में अर्पित कर दिया। विद्वेष न करता, तो मैं उससे निरपेक्ष अर्थात् उससे स्वाधीन होकर रह सकता। मन के किसी कोने में भी उसके प्रति विद्वेष भाव का पोषण नहीं करने का नाम ही मानसिक कुसंग-वर्जन है। जिन लोगों ने तुम्हारी क्षति की है, जिन लोगों ने तुम्हारे मनुष्यत्व को पददलित किया है, जिन लोगों ने तुम्हारी चित्तवृत्ति के उत्कृष्ट अंश को अन्याय से प्रभावित किया है, उनके प्रभाव या संसर्ग से बाहर निकलने का श्रेष्ठ पथ है– यह वर्जन-नीति। थोड़ा समझने से ही तुम देखोगे कि मनसा-वाचा-कर्मणा यह कुसंग-वर्जन वास्तविक रूप में सर्वनिरपेक्ष आत्म-प्रतिष्ठा का ही दूसरा नाम है।

निश्चय ही, पापी के प्रति विद्वेष-त्याग करने पर भी पाप के प्रति विद्वेष-त्याग करने का उपदेश मैं तुम्हें नहीं दे सकता। साधना-पथ, साधना के क्रम और साधना के अभ्यास के आनुपातिक परिवर्तन के साथ सभी उपदेशों में ही परिवर्तन होगा। इसीलिए युग-धर्म के रूप में एक बात आती है। देश-काल-पात्र देख-समझकर सर्वदा परिस्थिति के अनुसार व्यवस्था करनी पड़ती है। ऐसे मनुष्य भी हैं और मनुष्यों के मन की ऐसी स्थिति भी है जिसमें पाप के प्रति भी घृणा का पोषण करना असम्भव हो जाता है। किन्तु उन लोगों के

प्रसंग को अभी चर्चा से बाहर ही रखा है। तुमसे तुम्हारी बात ही कहूँगा और जो तुम्हारे और तुम्हारे समान संकटमय स्थिति में पड़ने वाले अन्य लोगों के काम आएगा, वही सब यहाँ लिखूँगा। इसलिए जो बात कह रहा था, उसी को आगे बढ़ाता हूँ।

कुचर्चा और कुचिन्तन-कुविचार

मैं यही बात कह रहा था कि केवल मनुष्य ही कुसंगी नहीं होता, तुम्हारे अपने कार्य, अपने वचन और अपने चिन्तन-विचार भी यथेष्ट कुसंगी हैं। खराब कार्यों में सहायक बन्धु-मित्रों का त्याग करके भी यदि तुम अनुचित कार्यों में ही लगे रहते हो, तो तुम्हारा सम्पूर्ण कुसंग-त्याग नहीं हुआ। खराब कार्यों से विरत होकर भी यदि खराब चर्चा का त्याग नहीं कर सके, तो भी सम्यक् रूप से कुसंग-त्याग नहीं हुआ क्योंकि वचन कर्मों को ही प्रेरित करते हैं। यदि तुम कहो कि कुचर्चा करने से क्या आता-जाता है अर्थात् क्या फर्क पड़ता है, क्योंकि मेरा मन तो निर्लिप्त ही रहा, तो इसका एक बड़ा कठोर उत्तर मैं दूँगा। पहले तो मैं यह कहूँगा कि तुम बड़े असत्यवादी हो। कुचर्चा करने से कुविचार नहीं आते अथवा कुविचार का पोषण करने से तुम कुकर्म या खराब कर्म नहीं करते, ऐसा परिचय देने की स्पर्धा यदि तुम्हारे भीतर बनी रहती है, तो इससे तुम एक असाधारण तरह के आत्म-प्रवंचक भी हो। एक बात या चर्चा अथवा एक चिन्तन-विचार में कितनी बड़ी क्षमता होती है, उसे वे लोग ही जानते हैं जो केवल एक मंत्र का अवलम्बन करके एकनिष्ठ साधन करते रहते हैं। यदि प्रणव या ॐ के एक अक्षर का बारम्बार उच्चारण करने से अथवा चिन्तन करने से ब्रह्मत्व-प्राप्ति सम्भव है, तो बारम्बार कुचर्चा कहने-

सुनने अथवा बारम्बार कुचिन्तन-कुविचार का पोषण करने से अधोगति क्यों नहीं होगी? इसलिए कुचर्चा और कुविचार का सर्वतोभावेन त्याग करना चाहिए, यहाँ तक कि किसी के साथ हास-परिहास या रसिकता के लिए भी कुत्सित प्रसंग नहीं उठाना चाहिए।

कुदृश्य-दर्शन, कुचर्चा-श्रवण और कुग्रंथ-अध्ययन

नेत्रों द्वारा कुदृश्य-दर्शन, कानों द्वारा कुचर्चा-श्रवण और कुग्रंथादि-पाठ द्वारा दूसरों के कुचिन्तन-कुविचार का परिचय प्राप्त करना भी सच्चे अर्थों में कुसंग ही है। तुम यह कह सकते हो कि तुमने स्वयं तो कुछ कहा नहीं या किया नहीं, फिर दूसरे लोग क्या करते हैं या क्या कहते हैं, उस पर ध्यान देने में क्या दोष है? अच्छा, मैं पूछता हूँ कि तुम अपने जीवन के अच्छे-बुरे सभी तरह के आचरणों की ओर देखकर बताओ तो सही कि तुम किस कार्य विशेष को दूसरों का कुछ भी अनुकरण नहीं करके सम्पादित करते हो? निःश्वास-प्रश्वास आदि कतिपय स्वतः प्रेरित क्रियाओं के अतिरिक्त तुम्हारे सभी अभ्यास किसी न किसी के, कुछ न कुछ अनुकरण से ही निर्मित हुए हैं। यह अनुकरण-प्रवणता हमारे भीतर इतने सूक्ष्म रूप से कार्य करती हैं कि लोगों के साथ मिल-जुलकर या लोगों की मात्र बातें सुनकर हम अनजाने ही अधिकांशतः उसकी नकल करते जाते हैं और कई बार खूब सजग दृष्टि रखकर भी इसे समझ या पकड़ नहीं पाते। इसलिए सावधान रहो। कुदृश्य-दर्शन मत करना तथा कुत्सा, निन्दा, परिचर्चा आदि मत सुनना, यहाँ तक कि मन के किसी कोने में भी कुदर्शन और कुश्रवण की क्षीणतम आकांक्षा, उत्सुकता या कौतूहल को मत जागने देना।

पुस्तक–चयन

अध्ययन और पाठ हेतु पुस्तकों के चयन में भी विशेष सतर्क रहना होगा। पवित्र-हृदय, उन्नत-जीवन वाले श्रद्धेय लोग जिन पुस्तकों की प्रशंसा करते हैं, उन पुस्तकों के अलावा अन्य कोई भी पुस्तक मत पढ़ना, विशेषकर उपन्यास– इसे तो प्राणान्त होने तक भी स्पर्श मत करना क्योंकि आजकल बंगाल तथा अन्य अंचलों में जिस साहित्य की भरमार है, उसमें पंचानबे प्रतिशत पुस्तकें लेखकों की व्यक्तिगत कुत्सित मनोवृत्तियों की खुजली से उत्पन्न हीनतापरक विकारों से युक्त होती हैं अथवा भावना प्रधान उपन्यास-पाठकों को प्रसन्न करने हेतु लेखकों की धन-लालसा से उत्पन्न पाप के फन्दे के रूप में होती हैं। इसीलिए, इसमें चपल हाव-भाव, विलासमय तथा व्यंग्यमय कुटिल कल्पनाओं की प्रचुरता होती है। काम-कातरता और लालसा-विह्वलता और अनैतिकता का थोड़ा लेप किया जाता है। साहित्य-चर्चा के नाम पर उसे पढ़ने पर तुम बड़े सहज ढंग से चित्त का संयम खो बैठोगे तथा अनायास ही मन कलुषित और पंकिल हो उठेगा क्योंकि तुम अच्छा-बुरा जो कुछ भी पढ़ते हो, प्रत्येक भाव का एक प्रकार का चित्र फोटोग्राफ की तरह मन के ऊपर अंकित हो उठता है। फोटोग्राफ तो कुछ दिनों बाद नष्ट हो जाता है किन्तु मन में अंकित चित्र सम्पूर्ण रूप से मनो-नाश होने के पहले बिलकुल ही विलुप्त नहीं होते। इसके फलस्वरूप मनुष्य को अतिशय कुत्सित और जघन्य दृश्यों के बोझ को जन्म-जन्मान्तर तक मन ही मन वहन करते हुए भटकना पड़ता है।

सत्साहित्य और आधुनिक साहित्य

वर्तमान समय में ग्रंथकार और प्रकाशक जिसे सच्चा साहित्य कहकर चीत्कार कर रहे हैं, वह वस्तुतः, "साहित्य" नहीं है, उसे मैं "राहित्य" कहूँगा। साहित्य शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ होता है– सान्निध्य, साहचर्य या मिलन। जो मेरे अन्तर्निहित उच्च भावों के साथ एक ही मिलन-मंच पर मुझे बैठने हेतु जगह नहीं बना सके, जो उन भावों को उद्‌बुद्ध करके महान कार्यों के साथ उसे प्रत्यक्ष तौर पर सम्मिलित नहीं कर सका, जो मेरी अनेक प्रकार की व्यक्तिगत भूख-प्यास की तड़प को भुलाकर मुझे सबके साथ प्रेम के अविच्छेद्य बंधन में बाँध नहीं सका– वह साहित्य नहीं, वह राहित्य है। साहित्य असंयम नहीं, उच्छृंखलता नहीं, स्वेच्छाचारिता नहीं। इसीलिए साहित्य हमेशा एकता का सृजन करेगा और असाहित्य ऐसा नहीं करता। साहित्य अवनत राष्ट्र के अवसाद (निराशा) की निश्चेष्टता के बीच भी एकता की शक्ति को प्रतिष्ठित करता है तथा सभी प्रकार के अलगाव को दूर करके संयमयुक्त स्वाधीनता की चूड़ान्त अभिव्यक्ति को प्रत्यक्ष प्रकट करता है। यह मनुष्य को उसके सहजात सौभाग्य से संयुक्त करता है, उसे समग्र कल्याण से विमंडित करता है, दुख-विपदा के घात-प्रतिघात के बीच जीवन को सुदृढ़ और आनंदमय बनाता है।

फिर हमारा तथाकथित साहित्य करता क्या है? कामान्ध लेखक की लेखनी घोर दुर्गन्धयुक्त कूड़ा-करकट को दिखावटी तौर पर चित्ताकर्षक बनाकर सभ्य घरों के आबाल-वृद्ध-वनिता सभी को कुंठारहित निर्लज्जता से प्रस्तुत करती है और बदनसीब मूर्ख लोग

उस कला की प्रशंसा करके उसे ही असीम आनन्द कहकर आत्मसात करते हैं तथा अन्तर्निहित पौरुष-व्यंजक भावों की उसी विष-प्रयोग से हत्या कर देते हैं। क्या यह साहित्य है, कि कल्याण-राहित्य है? आजकल के कितने लेखकों के साहित्य हम लोगों को उद्‌बुद्ध और भयरहित बनाकर अदम उत्साह से भरपूर होकर चित्त के श्रेष्ठ भावों को श्रेष्ठ कर्मों में रूपान्तरित करने की प्रेरणा देते हैं? कितनी पुस्तकें हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ की चिन्ता, व्यक्तिगत इन्द्रिय-लालसा, व्यक्तिगत सुख-दुख की बात को भुलाकर समग्र देश और राष्ट्र के स्वार्थ को अधिक बड़ा और महत्वपूर्ण दिखलाती हैं? समग्र राष्ट्र में व्याप्त जो मृत्यु और समग्र राष्ट्र में व्याप्त जो वार्धक्य (बुढ़ापा) नृत्य कर रहा है, काम-विह्वल और धन-पिशाच लेखकों के साहित्य तो उसके साथ ही बस ताल बजा रहे हैं। हमारा तथाकथित साहित्य प्रमाणित करता है कि हम लोग भीरु, कायर, नपुंसक और कल्याण-वंचित हैं। इसीलिए इसे साहित्य न कहकर राहित्य कहता हूँ। किसका राहित्य? उपाय-राहित्य, उत्थान-राहित्य, प्रतिष्ठा-राहित्य, पौरुष-राहित्य– जो कुछ व्यक्ति को मनुष्य बनाता है, उन सभी का राहित्य।

आदर्श ही राष्ट्रीय जीवन में शक्ति का संचार करता है। पतनोन्मुख भारत आज सर्वत्र आदर्श का कंगाल हो गया है। जो लोग भारत को आदर्श देंगे, वे ही सच्चे साहित्यकार हैं। जो लोग अपने जीवन और कर्मों के माध्यम से आदर्श का विकास करेंगे, वे ही श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। जो लोग अपने लेखनों और भाषणों के माध्यम से अतीत और वर्तमान युग के आदर्श मनुष्यों की आदर्श-जीवन-कथा का प्रचार करेंगे, आगत अथवा अनागत युग के आदर्श मनुष्यों के जीवन-चरित्रों का भक्ति से पवित्र कल्पना-शक्ति से सृजन करेंगे, वे

लोग मध्यम कोटि के साहित्यकार होंगे और जो लोग उसका अध्ययन करके अपने जीवन को उन्नत बनाने की आकांक्षा का पोषण करेंगे, वे लोग तृतीय श्रेणी के साहित्यकार होंगे। जो लोग इन तीनों में से किसी भी श्रेणी में नहीं आते हैं, वे लोग असाहित्यकार या राहित्यकार हैं।

जीवन का काव्य ही श्रेष्ठ काव्य है। तुम लोगों को इसी महाकाव्य की रचना करनी होगी। दूसरों के हितार्थ आत्मत्याग (आत्मबलिदान) करते हुए तुम लोग जिन रक्त-बूँदों का दान करोगे, बूँद से एक-एक अक्षर लिखित होकर एक महाकाव्य रचित होगा और गणदेवता (गणेशजी) चारों हाथों से चारों दीवारों पर इसे लिखेंगे। इस महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषय या सार होगा तुम लोगों का उच्चतम और महान लक्ष्य और इसका विस्तार या अलंकार होगा तुम लोगों का अटूट अध्यवसाय।

*

"तुम्हारी शक्ति तुम्हारी भक्ति में है। तुम्हारे जीवन की सार्थकता तुम्हारी सेवा में है, तुम्हारी आत्मप्रचार-हीन कार्यकुशलता में है। बाहर के ब्रहमांड में सम्भवतः तुम्हें कोई न भी पहचान सके किन्तु अपने अन्तरतम-पुर में, अपने निकट तुम देवेन्द्र-पूजित विग्रह रूप में अपने को प्रकटित करने में समर्थ होते हो।"

— श्री श्री स्वरूपानन्द

(पथ के साथी : पृष्ठ १०)

अध्याय अठारह

छात्र-जीवन में आत्मीय बन्धु और मित्र

ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों के अधिक मित्र होना अच्छा नहीं है। देश की वर्तमान नैतिक परिस्थिति उसे आत्मसात नहीं कर पाएगी। किसके सान्निध्य के प्रभाव से किसमें कौन भाव जाग उठेगा, इसे कौन जानता है? जिनके दो-चार मित्र और बन्धु रहें, उन्हें हमेशा इसका ध्यान रखना होगा कि उनका चरित्र अनिन्द्य और आचरण सभी प्रकार से दोषरहित हो।

अच्छा बालक किसे कहते हैं

हमेशा अच्छे बालकों के साथ ही मिलना-जुलना किन्तु स्मरण रखो कि किसी के पढ़ने-लिखने में अच्छा होने से उसे अच्छा बालक या छात्र नहीं कहा जा सकता। परीक्षा के अंकों के आधार पर किसी छात्र के अच्छे-खराब होने के बारे में निर्णय करना नितान्त भ्रम होगा। जो छात्र गरीबों के दुख से द्रवित होता है, रोगी की सेवा पसन्द करता है, देह से परिश्रम और व्यायाम करके शक्ति के अर्जन हेतु उत्साही है, हमेशा सत्प्रसंग की चर्चा करता है, सत्य बात कहने में निर्भीक रहता है तथा सम्मानित व्यक्तियों के मान को सुरक्षित रखकर चलता है, उसे मैं अच्छा छात्र कहूँगा। ऐसे छात्र परीक्षा में कम अंक पाने पर भी सभी के आदर्श होते हैं और ऐसे छात्रों का संसर्ग ही सच्चे अर्थों में कल्याणकरी होता है।

वाणी-संयम

वाचाल-छात्रों के अनेक मित्र बन जाते हैं, इसीलिए विशेष

प्रयत्नपूर्वक वाणी-संयम का अभ्यास करना और ऐसा करने से ही मित्रों की संख्या में कमी आ जाएगी। प्रत्येक सप्ताह एक निर्दिष्ट दिन अथवा प्रतिदिन ही कुछ निर्धारित समय पूर्ण रूप से मौन-धारण का अभ्यास करने से तुम देखोगे कि वाणी पर तुम्हारा कैसा अद्भुत प्रभुत्व उत्पन्न हो जाएगा। विद्यालय में अध्ययन-काल के दौरान जो आधे घंटे का अवकाश होता है, उसी समय इस नियम का पालन कर सकते हो। वाणी-संयम में महान गुण हैं। यह परोक्ष तौर पर वीर्य का अनावश्यक दुरुपयोग रोकता है और प्रत्यक्ष तौर पर आयु को बढ़ाता है। हमारे प्रत्येक निःश्वास-प्रश्वास के साथ क्रमशः हमारी आयु का क्षय हो रहा है। बातचीत करते समय निःश्वास-प्रश्वास को तीव्रतर और द्रुततर बनाकर बातें कहने से आयु का भी द्रुत क्षय होता है। अतएव, बातचीत जितनी कम की जा सके, उतना ही मंगलकारक है। बातचीत को कम करना शुरुआत में बहुत कष्टकारक होता है किन्तु यदि तुम दिन-रात या हमेशा भगवान की ओर चित्त को आकर्षित करने का प्रयास करते रहो, तो देखोगे कि भगवत्चर्चा के चिन्तन से प्राणों में जिस आनन्द का उद्भव होता है, विश्व-ब्रह्मांड का सारा बकवाद और हँसी-मजाक उसका लाखवाँ अंश भी नहीं है।

साधुओं की प्रशंसा और परनिन्दा

हमेशा साधुओं की प्रशंसा करनी चाहिए। किस महापुरुष ने किस प्रकार दुर्जय प्रलोभनों पर विजय प्राप्त की थी, किस प्रकार किस महापुरुष ने राज्य की तुलना में धर्म को श्रेष्ठ बनाया था, कहाँ और किसके चरित्र में भोग के ऊपर त्याग का गौरव स्थापित हुआ था, हमेशा इसका विवेचन करते रहना। इसके परिणामस्वरूप, तुम्हारे

समक्ष प्रलोभन के आते ही तुम महान और श्रेष्ठ दृष्टान्त की शक्ति से शक्तिमान होकर उसे पलभर में रौंदकर जा सकोगे।

परनिन्दा

मैंने पहले भी यह बताया है और अब भी कह रहा हूँ कि कभी भी परनिन्दा मत करना। अमुक व्यक्ति लम्पट है, अमुक व्यक्ति उच्छृंखल है, कोई परधनहारी है, कोई मिथ्यावादी है, आदि चर्चा करते-करते धीरे-धीरे मन के ऊपर अनैतिकता का एक बड़ी मुश्किल से मिटने वाला दाग पड़ जाता है। लोगों के दोषों पर दृष्टिपात करते रहने से मन की एक ऐसी अन्धता उत्पन्न हो जाती है कि बहुत अच्छे व्यक्ति के भी चरित्र के उज्ज्वल पक्ष पर दृष्टि नहीं जाती। तब विश्वामित्र का असाधारण पुरुषार्थ उपेक्षित होकर मेनका के साथ घटित सामयिक असंयम बड़ा हो जाता है, राणा प्रताप का अतुलनीय स्वदेश-प्रेम अस्वीकार्य होकर एक सामयिक अवसाद-प्रसूत अस्थायी अधीनता का स्वीकृति-पत्र अधिक विवेचन का विषय हो जाता है, स्वामी विवेकानन्द का अप्रतिम देश-प्रेम और अपूर्व पौरुष तुच्छ होकर उनका कोट-पैंट पहनना ही सामाजिक फौजदारी (अपराधमूलक) नियम रूप राहु का ग्रास बन जाता है। तब ऐसा प्रतीत होता है कि इस संसार में कोई निर्दोष व्यक्ति नहीं है, कोई निष्कलंक चरित्र या पवित्र आदर्श नहीं है। सभी दोषयुक्त हैं, सभी कुटिल हैं और सभी किसी न किसी दोष या अवगुण के भंडार हैं। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य की शक्ति-सामर्थ्य के ऊपर मनुष्य का विश्वास खंडित हो जाता है और धीरे-धीरे आत्मविश्वास नष्ट हो जाता है।

आत्म-निन्दा के दोष

केवल परनिन्दा ही घृणित है, ऐसी बात नहीं है। आत्म-निन्दा भी महापाप है। मेरे समान कोई पापी नहीं है, मेरे समान कोई कामुक नहीं है, आदि कहकर घूमना कोई पौरुष नहीं है। स्वयं को अध:पतित सोचते-सोचते अध:पतन की नींव को ही मजबूत बनाया जाता है। जो कर चुके, वह कर चुके, उससे क्या? आज से तुम श्रीभगवान का नाम लेकर, दृढ़ता से पैर जमाकर, मेरुदण्ड को सीधा करके खड़े हो जाओ, फिर कभी भी पाप तुम्हारे पास फटक नहीं सकेगा। जिस क्षण तुम दृढ़ स्वर से कहोगे– "मैं काम को परास्त करने वाला, मृत्युंजयी वीर हूँ"– ठीक उसी क्षण, देखोगे काम-क्रोधादि षड्रिपु तुम्हारे पैरों-तले पड़े हैं। कल तुम्हारे असंयत होने के कारण ही आज तुम्हारे भीतर संयत होने की संभावना है क्योंकि तुम तो मनुष्य हो, तुम कोई पेड़ या पत्थर नहीं हो। उत्थान-पतन को लेकर ही मनुष्य का जीवन है। कल तुम्हारा पतन हुआ था, तो आज तुम्हारे ही पराक्रम के प्रभाव से उत्थान होगा। विश्व के इतिहास में खोजने से पता चलेगा कि कितने रत्नाकर दस्यु कालान्तर में वाल्मीकि हुए, कितने जगाई-मधाई ने उद्धार प्राप्त किया– इसके असंख्य दृष्टान्त मिलेंगे। उन्हीं दृष्टांतों से सीख ग्रहण करो, तुम्हारे जीवन में भी नूतन उषा-किरणों का प्रकाश होगा तथा मलयाचल की पवन-वाही चन्दन की सुगंध आएगी, निराश मत होओ, शिथिल और अधीर मत बनो– विश्वास करो, निर्भय बनो। तुम्हारी आत्म-शक्ति से ही असंयत चित्तवृत्तियाँ शान्त होंगी, आत्मशक्ति ही तुम्हें मुक्त और महान बनाएगी।

असत्य का अभिनय

हमेशा सावधान रहना जिससे कभी कौतूहलवश भी असत्य का अभिनय न करो अथवा उसमें अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग न दो। साधु का ढोंग करके कितने पापी सच्चे साधु हो गए और असाधु का ढोंग कौन कर सकेगा? इस विषय में धोखा खाकर या सीखकर, जिस तरह भी हम लोग समझ और सीख सकें, इसके लिए हमें पहले से ही सतर्क रहना आवश्यक है।

भगवत्-संगीत की शक्ति

मन को हमेशा स्वच्छ और पापरहित रखने में भगवद् विषयक संगीत अतीव सहायक है। जिस संगीत में सरल मन से, सरल प्रार्थना सरल भाव से की जाती है, वही संगीत हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी है क्योंकि वही मन के भावों के पुष्टि-साधन में अधिक समर्थ है। जिन कीर्तनों का गूढ़ तत्व तुम नहीं समझ सकते हो, पहले उससे दूर ही रहना। विभिन्न प्रकार की योग्यता या अधिकार वाले लोगों के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाओं की व्यवस्था है। राधा-कृष्ण के तत्वमूलक कीर्तन-संगीत ब्रह्मचारी को आत्मसात कर पाना संभव होगा कि नहीं, इसे मैं नहीं जानता। जो पुराने हैं वे उसे ग्रहण करें। जो पुराने नहीं हैं, उन्हें उससे दूर ही रहना चाहिए। जयदेव, विद्यापति, चंडीदास या राय रामानंद आदि महात्माओं के लिए जो तत्व सहजपाच्य और हृदयग्राही है, वह अपरिपक्व मन, मस्तिष्क वाले किसी बालक के लिए भी वैसा लाभदायक होगा, ऐसी बात किसी पागल के अलावा अन्य कोई कहने का साहस नहीं करेगा।

"गगन-पवन को करके निनादित,
भारत में फिर उठे वह गान।
आलसियों की नींद भंग कर,
सबमें जीवन करे प्रदान।।
नवजीवन का अमोघ अमृत,
करे नवीन चेतना-उदय।
सब अतीत की भोग-विलासिता,
पाप, स्वार्थ हो जाए क्षय।।
होकर सरल, सत्य होकर,
अन्तर में आएं श्रीभगवान।
वे भी जागें, हम भी जागें
मुखरित करूँ उसे ही गान।।"

*

"जीवन तभी सार्थक होता है, जब यह विश्व-कल्याण के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार में सहायक होता है और जब आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से यह विश्व-कल्याण को साधित करता है। असाधक का जीवन-भार वहन करके क्या लाभ होगा? तीव्र तपस्या के माध्यम से इस जीवन को निष्फलता से बचाओ।"

– श्रीश्री स्वामी स्वरूपानन्द

(पथ का साथी : पृ०८८)

अध्याय उन्नीस

शिक्षक के प्रति श्रद्धा

विद्यालय के शिक्षक की योग्यता-अयोग्यता कुछ भी क्यों न हो, उनके पास सीखने को जो कुछ भी मिले, उसे श्रद्धापूर्ण चित्त से ही ग्रहण करना। सामान्य सीख को भी अश्रद्धा के साथ मत सीखना। एक निरक्षर मूर्ख के पास भी कुछ ग्रहणीय उपदेश मिलने पर उसे श्रद्धा के साथ ग्रहण कर सकने में ही कल्याण होता है। याद रखो कि तुम्हें विश्व में कल्याण-वितरण करना होगा। आज इस यौवन के प्रथम उन्मेष के समय जहाँ से जो कुछ और जितना कुछ पाओ, उसे साग्रह ग्रहण कर लो।

कक्षा में अंग-स्पर्श

कक्षा में बैठने पर भी यथासंभव दूसरों के देह-स्पर्श से दूर रहो। एक व्यक्ति की देह से दूसरे की देह में कई खराब चीजें संक्रमित होती रहती हैं, किसी के शरीर के भीतर स्थित पाप-प्रभाव हमेशा सम्पर्क में आए व्यक्ति के ऊपर असर डालता है। जिनका देह और मन संयम-शुद्ध और तपो-पवित्र नहीं है, उनके लिए इस सूक्ष्म प्रभाव का अतिक्रमण करना असम्भव है। जो लोग साधना के बल से उन्नत हो गए हैं, केवल उनके ही प्रभाव की प्रबलता से ये सब प्रभाव नष्ट होकर बलपूर्वक फेंके गए रबड़ की शक्ति की तरह लौट आते हैं।

कक्षा में बैठना

कक्षा में आसन लगाकर बैठ सको या न बैठ सको, किन्तु हमेशा मेरुदंड सीधा रखकर वक्षस्थल फैलाकर ही बैठना चाहिए।

मन में एक वीरतापूर्ण भावना का पोषण करने से तुम देखोगे कि पहले-पहल दो-चार दिनों तक शारीरिक अभ्यास के अभाव में थोड़ी असुविधा या असहजता अनुभव हाने पर भी अनायास ही सीधा होकर बैठ सकोगे। विचारों और चिन्तन की असीम क्षमता होती है। केवल सतत चिन्तन द्वारा मनुष्य पूरी तरह अनजान रहकर भी अपने देह-मन के गठन तक को परिवर्तित कर सकता है। वीर होने की आकांक्षा प्राणों में जागने पर बीच-बीच में भूलवश वक्र होकर बैठने पर भी वह आकांक्षा ही तुम्हारा कान पकड़कर सीधा करके बैठा देगी। रास्ते में चलते समय भी वीर के समान चलना। बातें करते समय भी वीर के समान ही बोलना। किसी भी पुरुषत्वहीन पंगु की तरह सहम-सहम कर क्षीण कदमों से रास्ते में मत चलना-फिरना।

छाता, जूता और वस्त्रादि

जूता-चप्पल और छाता का उपयोग हितकर है। नंगे पैर भ्रमण करने से नेत्रों को नुकसान होता है। छाता लगाने से नेत्रों की रोशनी बढ़ती है। इसलिए इसका उपयोग करना ही उचित है। फिर भी, बीच-बीच में उसका प्रयोग न करके शरीर को सहनशील बनाने का प्रयास भी अत्यावश्यक है।

दूसरे द्वारा प्रयुक्त छाता, जूता-चप्पल तथा वस्त्रादि का प्रयोग मत करना। वस्त्रों की विलासिता से दूर रहना चाहिए। सच्चे पुरुष के लिए उसका पौरुष ही यथेष्ट आभूषण है। जिसकी देह में दृढ़ता है, मन में बल है, हृदय में साहस है, उसके लिए परिचय-पत्र और वस्त्रादि की अधिकता-दोनों ही निरर्थक हैं। जो लोग स्वाभाविक सौन्दर्य से समृद्ध हैं, उनकी अंगकान्ति की अनुपम शोभा का विस्तार

सामान्य वन-फूल भी करते हैं। किन्तु जो लोग उस धन-सम्पदा से वंचित हैं, क्या कोहनूर पहना देने से वे सुन्दर हो जाएंगे? क्या भात पकाने वाली एक काली हाँड़ी के ऊपर आस्ट्रेलिया के सोने की खानों को रख देने से ही वह सुन्दर हो जाएगी? हमेशा याद रखना, तुम्हारी अपनी गुणावली के द्वारा ही तुम्हारा यथार्थ मूल्य निर्धारित होगा, तुम्हारी वेशभूषा द्वारा नहीं। पोशाक की चकाचौंध से मूर्ख को भ्रमित किया जा सकता है किन्तु खुली आँखों वाले सचेत जगत् को भ्रमित नहीं किया जा सकता है। मयूरपंखधारी कौआ का भेद एक न एक दिन खुल ही जाता है और फिर उसकी निन्दा की पराकाष्ठा आती ही है।

जिनमें आत्मश्रद्धा नहीं है, अपनी शक्ति-सामर्थ्य और अध्यवसाय पर अनुकूल विश्वास नहीं है, वे लोग ही लोगों के दरबार में अपना दाम बढ़ाने के लिए चमकदार वस्त्रादि की पोशाकें धारण करना चाहते हैं। किन्तु आत्मविश्वासी व्यक्ति जानता है कि यदि वह नग्नकाय होकर भी विश्व के सामने खड़ा हो जाएगा, तो भी उसको प्राप्य मूल्य से रंचमात्र कम देने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। इसीलिए, वह सभी तरह की विलासिता को घृणापूर्वक पदाघात करके दूर हटा देता है। "आप रुचि खाना और पर रुचि पहनना"– यह बात सत्य और असत्य के बीच समझौतापरक विवेचन के पक्षपाती दुर्बल चित्त वाले व्यक्ति के मुख में ही शोभा पाती है। पुरुष के समान रहने वाले पुरुष के लिए जैसे खाना 'आप रुचि' होता है, वैसे ही पहनना भी 'आप रुचि' (अपनी रुचि का) होता है।

जिस भारत ने विलासिता में डूबकर आत्महत्या की है, उसी भारत की प्रेतात्मा आज उसके उत्तराधिकारियों से सर्वत्याग रूपी

पिण्ड-दान की प्रार्थना करती है। यही पिण्ड प्रदान कर सकने से ही उसका उद्धार होगा। किन्तु इसे प्रदान करने हेतु तुम्हें सिर का मुंडन करके राष्ट्रीय जीवन से समस्त कलंक-कालिमा को उस्तरे (छुरे) से उन्मूलित करके फेंक देना होगा। हे भाई! क्या आज तुम इस कर्तव्य से विमुख होकर रहोगे? क्या आज तुम्हारा हृदय जननी-जन्मभूमि के दुख से एकाकार होकर कोई भी स्पंदन उत्पन्न नहीं करेगा?

*

धर्म ही
भारत की
राष्ट्रीय प्रतिभा है।
—श्रीश्री स्वामी स्वरूपानन्द

अध्याय बीस

विद्यालय से लौटने पर

विद्‌यालय से घर लौटकर वस्त्रादि बदलकर दूसरा पहनना चाहिए। उपयुक्त विश्राम के बाद हाथ-मुख आदि बिना धोए स्वल्पाहार नहीं करना चाहिए। स्वल्पाहार के पश्चात् शरीर की सहजता और समय सुलभ होने पर कुछ समय ज्ञान-चर्चा करना। तदुपरान्त नियमित व्यायाम पूरा करना। निर्दिष्ट व्यायाम को हमेशा अकेले ही करने में मजा नहीं आता, इसलिए दस-पाँच लोग मिलकर करने का प्रयास करना। इससे जिस तरह खेल आदि के समान आनन्द और उल्लास पाओगे, उसी तरह बीच-बीच में बहाना बनाकर आलस्यवश व्यायाम छोड़ने की जो रीति प्रचलित है, उससे भी बचे रहोगे।

व्यायाम और क्रीड़ा-कौतुक

निर्दिष्ट प्रकार के व्यायाम के अलावा बीच-बीच में नौका-चालन, अश्वारोहण, नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तेज गति से चढ़ना-उतरना आदि सभी प्रकार के शक्ति-सापेक्ष खेलों का यथेष्ट अभ्यास बनाए रखना। तैराकी का अभ्यास स्नान के समय ही किया जा सकता है। मनुष्य-सुलभ आत्मसम्मान लेकर रहने से, उन्नत सिर को यत्र-तत्र अवनत करके नहीं रखने की इच्छा होने पर विस्तृत और सुदीर्घ जीवन में कितनी जगहों पर, कितने प्रकार से शारीरिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, इसे बताने की जरूरत नहीं है। शारीरिक शक्ति की सहायता से जिन लोगों ने जीवन की अनेक कठिनाइयों को पराभूत किया है, उन लोगों का जीवन-चरित पढ़ना और उसका विवेचन करना। उन लोगों के जीवन की घटनाओं के

दृष्टान्त के आलोक में सर्वतोभावेन उसी तरह की अपनी स्थिति के लिए स्वयं को तैयार करने हेतु प्रयत्नशील रहना। अध्यवसाय के बिना विश्व का कोई भी कार्य नहीं होता, एक चींटी भी अध्यवसाय के बिना अपनी सामान्य जीवन-यात्रा को नहीं चला सकती। अतिमानवीय दैहिक और मानसिक शक्ति अर्जित करने हेतु भी तुम्हें असाधारण दैहिक और मानसिक अध्यवसाय का अवलम्बन करना होगा।

व्यायाम के अन्त में अंग-मर्दन

क्रीड़ा और व्यायाम आदि के बाद अंग-मर्दन करके कुछ उपयुक्त समय तक आलस्यरहित विश्राम करना और सारी थकावट दूर हो जाने पर त्रिसंध्या-स्नान का अभ्यास रहने पर सूर्यास्त के साथ ही साथ स्नान करना और स्नान के उपरान्त उपासना करना।

रात्रि-अध्ययन

रात में अधिक पढ़ाई-लिखाई मत करना। रात के प्रथम प्रहर में ही भूख के अनुसार सहजपाच्य, परिमित आहार ग्रहण करके शयन करने का प्रयास करना चाहिए किन्तु भोजन के तुरन्त बाद ही शयन करना निषिद्ध है। कुछ समय तक टहलने के बाद शयन करना चाहिए।

दैनिक आत्म-निरीक्षण

शयन करने से पहले दिन भर के कामों का एक हिसाब लगाना। दैनन्दिनी (डायरी) में अपने सभी दोषों (अवगुणों) को निस्संकोच लिखना। कौन से कर्तव्य और कार्य तुम्हारी अक्षमता से या आलस्य और उदासीनता के कारण बचे रह गए, इसका सूक्ष्मता से विचार करना। आज तुम्हारे द्वारा संसार का कितना कल्याण हुआ, कितना हो सकता था किन्तु नहीं हुआ, इन सबका भी

उल्लेख करना। इसके द्वारा आत्मविश्लेषण ओर प्रलोभनों पर विजय पाने की तुम्हारी क्षमता बढ़ेगी और ईश्वरीय महत्व के प्रत्येक अनुष्ठान में अभिव्यक्त हो सकेगी।

शय्या

कुश-आसन, कम्बल या चटाई आदि सहज-प्राप्य साधारण बिस्तर पर शयन करना। चद्दर, गद्दा, तकिया आदि अनावश्यक आडम्बर करने में इस कारण लज्जा-शर्म से संकुचित हो जाना कि तुम लाखों-करोड़ों निराश्रित नर-नारियों के दुखों को दूर करने में रंचमात्र भी प्रयत्न नहीं करते हो। हृदय के अन्तरतम में यह अनुभव करो कि तुम्हारी भोग-चेष्टा भगवान के अभिशाप को आकर्षित कर रही है।

मच्छरदानी का प्रयोग करना। कभी भी दूसरों द्वारा प्रयुक्त बिस्तर पर मत सोना अथवा एक ही बिस्तर पर दो-तीन लोग मत सोना। ब्रह्मचारी के लिए अकेले सोने (शयन) को ही अत्यावश्यक समझना। समय विशेष पर गुरुजनों के सान्निध्य में शयन करना भी हितकर है।

शयन के पूर्व एक गिलास शीतल जल के सेवन से अच्छी नींद आती है और पेट भी साफ होता है तथा शीतल जल से अंडकोष को धोने से स्वप्नदोष की सम्भावना कम रहती है।

*

"मंत्र का साधन
अथवा
शरीर का मरण (नाश) ।"

–श्रीश्री स्वरूपानन्द

अध्याय इक्कीस

स्वप्नदोष (सुप्तिस्खलन)

जो लोग ब्रह्मचर्य-पालन में उपेक्षा या अवज्ञा का भाव रखते हैं, उन लोगों को जितने प्रकार के कष्ट परेशान करते रहते हैं, उनमें सर्वाधिक पीड़ादायक है-स्वप्नदोष। महीने भर से भी अधिक अवधि का भोजन पचकर जिस स्वल्प वीर्य में परिणत हुआ, कर्म-दोष से उसका सब कुछ एक रात में क्षय को प्राप्त हो सकता है। तुम देखते हो कि तुममें कोई काम-लिप्सा नहीं है, धक्के खा-खाकर अनेक सीखें पा चुके हो, इसीलिए तुम कुसंग में नहीं जाना चाहते, गन्दे कार्यों में लिप्त नहीं होना चाहते, कुत्सित चर्चा या अश्लील दृश्य-दर्शनादि को बड़े कठोर भाव से छोड़ चुके हो, फिर भी एक दिन सहसा अनजाने में ही तुम्हारा वीर्य-स्खलन हो गया। मनुष्य जब खराब पथ छोड़कर सत्य पथ पर चलने की प्राणपण चेष्टा करता रहता है, सद्ग्रंथ-पाठ, साधुसंग और सद्गुरु से प्राप्त साधना द्वारा क्रमशः उन्नति-पथ पर अग्रसर होता रहता है, उस समय भी बीच-बीच में इस तरह के संकट आकर उसे बिलकुल हताश कर देते हैं। तब वह सोचता है कि इतना करके भी जब वीर्य-क्षय नहीं बन्द कर पा रहा हूँ, इतने प्रयासों के बाद भी जब सफलता हाथ नहीं लग पा रही है, तब ब्रह्मचर्य-पालन कर पाना निश्चय ही बिलकुल असम्भव है। यह प्राचीन युगों के वृद्ध ऋषियों की वार्धक्य-जनित विकारोक्ति या नशेड़ियों की सनक या कल्पना मात्र है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि दुर्बलचित्त लोग हताशा से शिथिल होकर इसी तरह की अनेक बातें कह सकते हैं किन्तु उनकी बातें यथार्थतः सत्य नहीं हैं। ब्रह्मचर्य-विरोधी अभ्यास के मोह से ग्रस्त होकर जिन लोगों ने भरे-पूरे यौवन का लगभग आधा भाग बिता दिया है, ऐसे लोग भी सुदृढ़ संकल्प से सबल होकर वृद्धावस्था में भी यौवन सुलभ शक्ति-सामर्थ्य, मेधा-मनीषा को अटूट रखते हैं, ऐसे दृष्टान्त सुलभ हैं। यदि संकल्प में अटूट या अविचलित रह सको, यदि जीवन भी चला जाय, तब भी स्वल्पमात्र ब्रह्मचर्य-व्रत भंग नहीं होने दोगे, ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर सको और किसी भी ओर न देखकर एकनिष्ठ मन और एकाग्र ध्यान से तुच्छ से भी तुच्छ प्रत्येक नियम का बारीकी से और श्रद्धापूर्ण चित्त से पालन कर सको, तो निश्चय ही तुममें ब्रह्मचर्य अक्षुण्ण या अखंड रूप में प्रतिष्ठित होगा। जिस उदासीनता ने तुम्हारा सर्वनाश किया है, उसे असाधारण उद्यमशीलता से पराजित करो, अथक अध्यवसाय से अपने पूर्वार्जित संस्कारों को निर्मूल करो। तुम्हें अपने पूर्ववर्ती अनुभवों के संस्कारों का सम्यक् नाश करना होगा, तभी ब्रह्मचर्य-विरोधी सभी प्रतिक्रियाओं का विनाश होगा। आज तुम खराब कर्मों के अभ्यास का त्याग करके भी अपने मन के भीतर उसमें अदृश्य तौर पर संलग्न होकर रहते हो। दृष्टिकोण की स्थूलता के कारण उसे देख नहीं पाते हो किन्तु जब तक तुम्हारे मन रूपी दर्पण पर खराब कर्मों का दाग लगा रहेगा, तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित नहीं होगा। इसीलिए इसी क्षण तैयार हो जाओ। पल भर भी विलम्ब न करके मन के पापों को मन से दूर कर डालो।

किन्तु कैसे दूर करोगे? शरीर को दिनरात विश्व-कल्याण के कर्मों में व्यस्त रखकर तथा मन को दिनरात भगवच्चिन्तन में निविष्ट रखकर मन के पापों को दूर करो। शरीर को अवसर देते ही उसकी पूर्व-अभ्यस्त कामोन्मुखता जाग उठेगी और मन को अवसर देते ही तुम्हारी इच्छा के अनजाने ही मन विलास के राज्य की ओर दौड़ पड़ेगा। इसलिए अब पल भर भी विलम्ब मत करो। अभी किसी काम में लग जाओ, ऐसे काम में जिसमें लालसा की वस्तु के ऊपर पतित होने का मौका आँखों में न आने पाये, जिससे कामनाओं की बातें सुनने का मौका कानों को न मिले, जिससे जीभ को पार्थिव जगत् की तुच्छ आकांक्षाओं को कहने का मौका न मिले। यदि कोई काम नहीं पाओ, तो अभी थोड़ा-बहुत कोई काम निर्मित कर लो। देश और राष्ट्र में कितना अभाव है, कितना दुःख है, इनमें से एक या एकाधिक अभावों-दुखों के समाधान को श्वास-प्रश्वास की तरह अत्यावश्यक समझकर करने में जुट जाओ। जिसे तुम समझते हो कि तुम्हारी शक्ति से पूरा नहीं हो पाएगा, उसी को खूब दृढ़ता से पकड़ लो। अपने देह और मन की समग्र शक्ति को उसी एकमात्र आसन्न कर्तव्य पर केन्द्रित रखने के लिए वह कुछ मात्रा में असम्भव तो रहेगा ही। जिस कार्य में तुम्हारी समग्र बुद्धि को लगाना है, उसी कार्य में अपनी दैहिक और मानसिक क्षमता की यथासम्भव समग्र पूँजी पूरी तौर पर खर्च करनी होगी और तुम ऐसा ही कार्य करने में लग जाओ। पूरी शक्ति से उसी एक निर्दिष्ट कल्याण-कर्म को करते जाओ। फिर जो भी हो, प्राण रहे या चला जाए, कोई चिन्ता मन करो,

कार्य में लग जाने मात्र से ही मन की प्रच्छन्न काम-लिप्सा दूर

नहीं हो जाएगी, इसलिए स्वप्नदोष भी एक दिन में ही बन्द नहीं होगा।

"निज सुख की इच्छा से ही वीर्य-अपव्यय ।
विश्व-सुख के चिन्तन से ही आनन्द-उदय ।।"

यदि अत्यधिक गुप्त रूप से भी भोग की इच्छा मन में जाग्रत होती है और वह इच्छा पल भर भी बने रहे, तो भी उससे वीर्य-क्षरण निश्चित ही होगा, इसे रोकने की क्षमता किसी में भी नहीं है। इसके दृष्टांतस्वरूप आयुर्वेदकार ने कहा है– "जैसे घड़े में भरा हुआ पानी रिसकर जल की बूँदों के रूप में गिरता है, वैसे ही संभोग की इच्छा या शुक्र-रेचक अन्यान्य कारणों की उपस्थिति मात्र से 'अस्थि'* में स्थित गाढ़ा वीर्य अग्नि-तप्त घृत की तरह तरल होकर सूक्ष्म छिद्र-पथ से बाहर निकल जाता है और प्रजनन-कोष में आकर गिरता है। इस प्रकार स्वस्थान-च्युत वीर्य-कणों के प्रजनन-कोष में आकर संचित होने पर जब स्थानाभाव या अस्वाभाविक उत्तेजनावश उनका अन्य स्थान पर संचरण नहीं हो पाता, तब कभी रात में अचानक अनजाने ही वह देह से बाहर होकर देहधारी को अवसादग्रस्त और हताश कर देता है। स्वप्नदोष एक दिन या एक बार के काम-चिन्तन से नहीं होता, अनेक बार थोड़ा-थोड़ा करके अनजाने ही वीर्य

---

* यहाँ 'अस्थि' के रूप में अंडास्थि या अंडकोष समझना ही सुसंगत है। काम के चिन्तन मात्र से रक्त-प्रवाह अंड में प्रवेश करता है और अंडकोष के रक्त से शुक्र (वीर्य) को पृथक् करके सूक्ष्म नलिका द्वारा शुक्र कोष में लाकर व्यय हेतु संचित करता है।

जो स्वस्थान-च्युत होता है, स्वप्नदोष उसका ही एकत्रित मूर्तिमंत रूप है। प्रकट रूप में वह स्खलन होने के बहुत पहले ही तुम दुर्बल हो गए थे। बहुत दिनों से जिस तरह का चिन्तन करना तुम्हें अच्छा लग रहा था, नवीन जीवन-यापन का संकल्प लेने के बाद भी मन की स्वाभाविक प्रवणता (रुझान) के कारण बीच-बीच में मन के उसी प्रकार असंयत पथ पर चले जाने के कारण ही तुम्हारा यह अमंगल पूरी तरह से दूर नहीं हो पाता है। किन्तु इसे निश्चित रूप से जानना कि मन को अनुशासित करते-करते, प्रबोधन-वचनों और कठोर व्यवहार से चित्तवृत्तियों को धीरे-धीरे अपने नियंत्रण में लाने के साथ ही यह अमंगल दूर होकर रहेगा। मन को जितना ही अपने वश में कर पाओगे, उतना ही यह अमंगल तुम्हारे पास फटकने में भय पाता रहेगा। मन को अनुशासित करने के जितने प्रकार के पथ प्राचीन महर्षियों ने निर्देशित किए हैं, देह को सुस्थिर और चित्त को भगवदनुरक्त करने हेतु योग, ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि जितने प्रकार के उपाय खोजे गए हैं, वे सभी तुम्हें उच्चतर कल्याण-सोपान पर आरूढ़ करने के साथ ही स्वप्नदोष के अमंगल से भी तुम्हारी सुरक्षा करेंगे। इसलिए अब अवसाद से हतोत्साहित मत होओ, हताशा से आत्मविश्वास-रहित मत बनो। नवीन उत्साह से एक-एक कदम अग्रसर होकर, दृढ़ संकल्प का अवलम्बन करके, अटूट अध्यवसाय की सहायता लेकर पथ पर चलना आरम्भ कर देने से लम्बा पथ भी गन्तव्य तक पहुँचा देगा। मनुष्य होने का ज्वलंत आग्रह लेकर संघर्ष में कूद पड़ने तथा भगवद्-विश्वास रूप महान शक्ति से सबल

होकर हाथ-पैर संचालित करके अथक प्रयत्न से अथाह सागर को भी पार कर सकोगे। तुच्छ और सामान्य कर्तव्यों को भी ईश्वरीय-बुद्धि से ग्रहण करो, फटे बिस्तर को सिलते समय उसमें भगवान की लीला देखने के लिए मन को समझाओ, वृक्ष से फल गिरते समय बीजारोपण से लेकर दूसरों के लिए फल प्रदान करने तक सभी कार्यों और उसमें सन्निहित ईश्वरीय विधान को देखने-समझने के लिए मन को नियोजित करो। हाट-बाजार जाते समय सोचो कि किस ईश्वरीय भाव को व्यक्त करने के लिए थके-हारे लोग पीपल या वट-वृक्ष के नीचे आकर एक स्थान पर एकत्र हुए हैं और पुनः सामयिक जरूरत पूरी हो जाने के बाद चतुर्दिक् बिखर जाएंगे। जो लोग आज आए हैं, शायद वे लोग कल नहीं आएंगे और आज जिन लोगों के चरण-चिह्न इस पार्थिव जगत् के ऊपर अभी भी नहीं पड़े हैं, सम्भवतः कल वे ही आएंगे– इस तरह असंख्य निर्मल कौतूहलयुक्त भावों से अपने कोलाहलमय चित्तवृत्तियों को सराबोर कर दो। इसी तरह हर कार्य, हर कदम पर भगवान की लीला के विकास और अभिव्यक्ति को अपने जीवन और बाहर की सैकड़ों परिस्थितियों में देखने हेतु प्रयत्नशील रहो। फिर एक दिन देखोगे कि दैहिक अमंगल और मानसिक अमंगल आदि सभी कुछ एकमात्र परम-प्रेमामृत-सागर की आनन्दरस-तरंगों में डूब गए हैं। तब तुम देखोगे कि तुम्हारी मुक्ति ने विश्व-ब्रह्मांड की मुक्ति को अपना मित्र बना लिया और तुम्हारी साधना ने विश्व-ब्रह्मांड की साधनाओं के साथ लय-तालबद्ध नृत्य करते हुए परम चरितार्थता और कृतार्थता प्राप्त कर ली है।

आजीवन प्रयत्नशील बनो, प्रयत्न द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध वीर्य की बूंदों के निःसृत हो जाने के कारण शोक मत करो, शोक कायरों का अवलम्बन है, शोक तुम्हें शोभा नहीं देता। विश्व के महान कल्याण में अपने जीवन का उत्सर्ग करके तुम्हें विश्व के वक्षस्थल पर पद-चिह्न अंकित करके जाना है, सैकड़ों-करोड़ों व्यथितों की व्यथा दूर करके, सबके मुख पर सुखद हास्य प्रस्फुटित करने में, आवश्यक होने पर तुम्हें तिल-तिल करके दुख की आग में दग्ध होना होगा। क्या तुम्हें शोक शोभा देता है? तुम भले ही क्षीण हो जाओ या स्वस्थ ही होओ, दुर्बल रहो या सक्षम ही रहो, जिस किसी भी स्थिति-परिस्थिति या परिवेश में रहो, तुम्हें आत्म-विकास करना ही होगा। अनजाने में वीर्यक्षय होने के कारण उदास होकर क्यों बैठे रहोगे? जो गया, वह जाने के लिए ही था। तुम्हें छोड़कर जाने पर भी वह भगवान की इच्छा का संकेत मान चुका है। जितना क्षय हो गया, हो जाए। उसके लिए पछतावा मत करो; किन्तु सावधान रहो जिससे कि भविष्य में बिन्दुमात्र वीर्य भी स्थान-च्युत न हो सके, बस इसी ओर सजग दृष्टि रखो। तुम्हारा शरीर और तुम एक नहीं हो। तुम विश्व-कल्याण के लिए अपने शरीर को केवल यंत्र-रूप में ही उपयोग कर रहे हो। यह यंत्र जिससे काम के समय समुचित ढंग से काम में आ सके, जरूरत पड़ने पर जंग लगने के कारण यह यंत्र रुक न जाए। इसी कारण प्रत्येक बूंद के करोड़वें अंश विशेष तक को भी तुम्हें सम्पूर्ण प्रयत्न और सतर्कता के साथ संचित करना होगा। यदि तुम ऐसा नहीं करते हो, तभी इस देह-यंत्र के माध्यम से तुम्हारी कल्याण-कर्म करने की एषणा (प्रबल इच्छा) का

बाह्य तौर पर विकास नहीं हो पाएगा। इसलिए तुम प्राणवायु (सांस) को नियमित करके, दृष्टि को केवल भ्रू-मध्य स्थित लक्ष्य पर एकाग्र करके हर पल यही प्रतिज्ञा करते रहो– मरूँ या जीवित रहूँ, अब और वीर्यक्षय नहीं होने दूँगा। प्राण चला जाए या रहे, मैं हताश नहीं होऊँगा, शिथिल नहीं होऊँगा, वीर्य-रक्षण में तत्पर और विश्व-कल्याण में सर्वस्व उत्सर्ग करने वाला अवश्य ही बनूँगा, बनूँगा ही, बनूँगा ही। तब देखोगे कि तुम्हारे संकल्प के वज्राघात से पूर्वकृत कर्मों के पर्वत-शिखर खंड-खंड होकर चकनाचूर हो जाएंगे। अब आज प्रत्येक रक्त-स्पंदन में केवल यही ध्वनित हो।

*

आत्म–गठन
या ब्रह्मचर्य-प्रसंग

वर्णानुक्रम शीर्षक-सूची

*

प्रार्थना

हे प्रभो! कर दो मुझे, तेज-वीर्य-दान ।
बाहुओं में अमित शक्ति, हृदय में ब्रह्म-ज्ञान ॥
देह-मन-प्राणों से होओ, आत्मीय, उदार ।
कोमल स्पर्श से दूर, करो अन्धकार ॥
पर-दुख से करो मुझे, चंचल, अधीर ।
निज दुख में रखो मुझे, अविचल, स्थिर ॥
असत्य, अधर्म से तुम, रखो मुझे मुक्त ।
निज प्रेम-डोर में तुम, बाँधो मेरा चित्त ॥
कुबुद्धि, कुमति मेरी, कर दो दमन ।
सर्वजीवहित में रत, करो मेरा मन ॥
सत्साहस दे दो मुझे, सम्पद-विपद में ।
वीरतामंडित मुझे, करो प्रति पद में ॥
स्वयं को मैं जानूँ प्रभू, तुम्हारा किंकर ।
कोटि वज्राघात से भी, पाऊँ नहीं डर ॥
तव चरणारविन्द में, करूँ नमस्कार ।
हे अमृत, हे सुन्दर, मम आनन्द अपार ॥

*

अखण्ड–संहिता

'अखण्ड-संहिता' या अखण्डमण्डलेश्वर श्रीश्री स्वामी स्वरूपानन्द परमहंसदेव की उपदेश-वाणी भारत के धर्म-साहित्य में युगान्तर लेकर आई है। जीवन की ऐसी कोई भी जटिल समस्या या प्रश्न नहीं है जिसकी मीमांसा इस महान ग्रंथ के बिखरे हुए पृष्ठों में न मिलती हो। उपन्यास की भांति चित्ताकर्षक होने के कारण एक बार पढ़ना आरम्भ करने पर फिर उसे पूरा किए बिना छोड़ने का कोई अन्य उपाय नहीं है। इसमें गुप्त, निगूढ़ और अत्यावश्यक विषयों से सम्बन्धित सैकड़ों समस्याओं की समयोचित अपूर्व मीमांसा की गई है। इसका प्रत्येक खण्ड एक पृथक् ग्रंथ की तरह है। पूर्ववर्ती खण्डों को नहीं पढ़ने के कारण परवर्ती खंडों का अर्थ समझ में नहीं आएगा या लाभप्रद नहीं होगा, ऐसी बात नहीं है।

प्रथम खंड से लेकर चौबीस खंडों तक प्रत्येक खंड का धर्मार्थ शुल्क रूपये १५०/- से २००/- तक है।

*

अयाचक आश्रम

डी०४६/१९बी०, स्वरूपानन्द स्ट्रीट,

लक्सा, वाराणसी–२२१०१०